ज्योतिष तथा जीवन के अनबूझे रहस्य

ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान

स्वामी सनातन श्री

ज्योतिष तथा जीवन के अनबूझे रहस्य

ज्योतिर्वेद
के विभिन्न सोपान

श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री जी के श्रीमुख से
श्री सनातन आश्रम
गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ

प्रस्तुति : राजेश्वरी शंकर
संपादिका : 'द टाइम्स ऑफ एस्ट्रोलॉजी

NISHKAAM PEETH PRAKASHAN
(Publication Divison of **"The Times of Astrology"**)

First Edition : 2001

ISBN - 81-87528-21-4

Also available at :
Lucknow Beureau of **"The Times of Astrology"**
B-4, Arif Vikas Chamber, Sector-2, Vikas Nagar, Lucknow
Phone : 0522 - 769462

Cover Design : Anindya Shanker

http://www.thetimesofastrology.com

Published by **Rajeshwari Shanker** on behalf of
Rajeshwari Shanker Associates for **Nishkaam Peeth Prakashan**
(Publication Division of **"The Times of Astrology"**)
Rajeshwari Shanker Associates,
1009, Indra Prakash Building, 21 Barakhamba Road, New Delhi - 110 001
Ph : 3717738, 3717743,
www.thetimesofastrology.com
Email: *editor@thetimesofastrology.com*
Printed by : Triveni Offset, Navin Shahdara,
Delhi - 110 032.Ph. 2288175

(श्रद्धेय स्वामी सनातनश्री जी)

श्री सनातन आश्रम
गौराबाग, कुर्सी रोड,
लखनऊ – 226007
फोन : 0522–362686, 0522–361796

प्रास्ताविक

"संन्यासी के श्रीमुख से निस्सृत प्रत्येक शब्द स्वतः प्रमाण होता है", इसमें कोई सन्देह नहीं रहेगा, पाठकों को।

वस्तुतः सनातन परंपरा से हमारा विचलन निहित स्वार्थों की मात्र तात्कालिक उपलब्धि है। ऐसे दौर में जरूरत थी हमें सच्चे संन्यासियों के आशीषों की, जो सनातन परम्परा के ऊपर पड़ी राख की परतों को अपनी प्राण ऊर्जा से विस्फारित कर समूचे संसार को उत्प्रेरित करते ताकि **'सनातन दर्शन'** और उसकी परम्परा, जनजीवन का फिर से एक अनिवार्य अंग बनते। खेद है कि संन्यास के मर्म को समझे बिना, अनेकों व्यवहार बुद्धि में किंचित अधिक कुशल व्यक्तियों ने, संन्यास के बाह्याडम्बर को तो अपना लिया किन्तु अपने अन्दर संन्यास वृत्ति को नहीं जगा पाए और संन्यास के वस्त्रों में सजे संवरे इन स्वयभूं व्यक्तियों के प्रति उमड़े जन मानस के प्यार और सम्मान पर, जो इन्हें सहज रूप में एक बार मिलना शुरू हुआ, तो कहीं बाद में यह छूट न जाए, इस व्यामोह और व्यापार बुद्धि के चलते, वे सचमुच अपने ढोंग और आडम्बर का एक विशाल साम्राज्य खड़ा करने को मजबूर हुए। ऐसा करके, न सिर्फ इन तथाकथित संन्यासियों/संतों ने अपना अहित किया बल्कि सच्चे संतों और संन्यासियों को पृष्ठभूमि में ढकेल कर जनमानस, सचराचर और सनातन दर्शन

के असली रूप के साथ घोर अन्याय कर स्वयं घृणित अपराधी बने।

*ऐसे माहौल में, "**श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री**" जी की इस भरत खण्ड भारत में प्राणवान उपस्थिति, बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी का एक बहुत बड़ा गौरव है, सनातन संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म और जीवन का एक ऐतिहासिक अध्याय है, जहाँ संन्यासी, समाधि और समाधान के प्रत्यय सदैव के लिए अक्षुण्ण हो गए हैं।*

मुझे बताया गया था कि लखनऊ में कुर्सी रोड पर **'श्री सनातन आश्रम'** है और वहाँ एक विलक्षण संन्यासी स्वामी सनातन श्री हैं। यह आश्रम अद्भुत है, जहाँ पशु, पक्षी यथा कुत्ते, बिल्लियों की योनि में अवतरित जीवात्माएँ "भजो राम! राम! राम! भजो। गोविन्द! राधेश्याम।" के भजन गाते हैं। सामान्यतः यह विचित्रता आश्चर्य पैदा करती है, ऐसा चमत्कार तुरन्त देखने जाने की ललक पैदा करती है, हर मनुष्य के मन में। पर मुझे लगा, यह भी लोगों को आकर्षित करने का ढोंग भर हो सकता है किसी आश्रम का, उस देश में, वर्तमान में जिसमें संन्यासी/संत, अध्यात्म को छोड़ अपने चमत्कारी बाजीगरी करतबों से अपने–अपने प्रतिष्ठान बनाए बैठे हैं।

पुनः एक मित्र ने श्रद्धेय स्वामी जी के बारे में एक प्रसंग सुनाया :

> *"एक व्यक्ति बदहवास सा आकर आश्रम में स्वामी सनातन श्री जी के चरण कमलों में आ गिरा। बोला, 'स्वामी जी! मुझे बचाइए। मैं तीन दिन और तीन रात से सो नहीं सका हूँ। भय और आतंक से पूरा जीवन भर गया है। मुझे बचाइये।"*
>
> *"बात क्या है, भगवन?" 'गोविन्द हरि! हरि गोविन्द' कहते हुए स्वामी जी ने पूछा।*
>
> *'मेरे पड़ोसी ने मुझे जमकर गालियाँ दी हैं, खूब पीटा है, देखिए, मैं तीन दिन से अपना टूटा हुआ हाथ लिए घूम रहा हूँ। प्लास्टर कराने तक बाहर नहीं निकला हूँ। अगर उसने देख लिया और बाहर पा लिया, तो फिर और मारे बिना नहीं छोड़ेगा, ऐसा मुझे लगता है। मुझे बचा लीजिए स्वामीजी" वह व्यक्ति बारबार गिड़गिड़ाए जा रहा था।*
>
> ***'गोविन्द हरि! बन्धु! तुम्हारा कष्ट दूर होगा कैसे? भजना चाहिए था तुम्हें गोविन्द को, जो सबका कष्ट दूर करते हैं, और भज रहे हो तुम तीन दिन से अपने पड़ोसी को, जो कष्ट दे रहा है।** जिसने कष्ट दिया है, उसे भजोगे, रातदिन उसी का ध्यान करोगे तो वह और कष्ट नहीं देगा, तो क्या करेगा? गोविन्द हरि! स्वामी जी ने सहज सरलता में उत्तर दिया। . . . "*

उस व्यक्ति का कष्ट दूर हुआ या नहीं या कैसे दूर हुआ, यह जिज्ञासा मुझे नहीं

हुई। बस जिज्ञासा हुई तो इतनी कि यह कोई जेनुइन सन्त है, जो खो नहीं गया है, इस आडम्बरपूर्ण आधुनिक युग में; तुरन्त दर्शन करना चाहिए।

उसके बाद का वृतान्त, नितान्त निजी है। सार्वजनिक है तो इतना कि ऐसी आत्मीयता, ऐसा स्नेह, ऐसा ज्ञान और ऐसी शांति कहीं और नहीं मिलती। मिलकर लगता है, वापस जड़ों को पा लिया हो पेड़ ने जैसे, अब उसे सूखने और मुर्झाने का कोई डर नहीं।

"सत्य वही है जो सरलतम तरीके से भासने लगे आपको, और जिसका सत्यापन आपका अन्तर्मन अविलम्ब कर दे, अन्यथा, वह सत्य नहीं, सत्याभाष होगा, और कभी–कभी मात्र तात्कालिक सत्य होगा।" यह कसौटी भी, सच के अनुयायियों को श्रद्धेय स्वामी जी से ही प्राप्त होती है। सत्य, जो सार्वजनीन है, सार्वकालिक है, न काल की अपेक्षा रखता है न देश की, सार्वत्रिक रूप से सत्य है, सदा–सदा, वह ही ऋत है, जिसका प्रकटन ऋग्वेद में हुआ।

जितना कुछ वेद को मैंने जाना है, श्रद्धेय स्वामी जी से ही सीखा है, जाना है और प्रयासरत हूँ।

वस्तुतः तो वेद, अनेकों विद्वानों के विद्वतापूर्ण भाष्यों के ढेर में खो गए हैं जैसे कि बहुमूल्य हीरे की अँगूठी, कूड़े के किसी विशालकाय ढेर में खो जाए।

आज से लगभग 42 वर्ष पूर्व लखनऊ में नवरात्र के अवसर पर प्रकट किए गए वेद के रहस्य जो स्वामी जी के श्रीमुख से निस्सृत हुए, वे निरन्तरता में सम्पूर्ण वेदों, सनातन दर्शन की वास्तविक कुंजिकाएं हैं, जिनका पारायण यथाक्रम से नवरात्र में विशेषतः और सदैव ही, सामान्यतः जो भी करेंगे, मनन करेंगे, वे वेदों के रहस्यों को जानने की क्षमता प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय कदम उठाएंगे, इसमें सन्देह नहीं।

महामुनि याज्ञवल्क्य, बाल्मीकि तथा नाना ऋषियों द्वारा पूर्व में मुखरित श्री राम कथा के अनन्य रहस्य, जब श्रद्धेय स्वामी जी के श्रीमुख से अनावृत होते हैं, तब तुरन्त लगने लग पड़ता है कि सभी पूज्यनीय ऋषिगण, भगवान राम की कथा के बहाने से हमें हमारी ही गाथा सुना रहे हैं, हमें हमारी उत्पत्ति और जीवन संपादन का स्वरूप दिखला रहे हैं, हमें सरलतम तरीके से वेद पढ़ा रहे है जिनके बारे में कालान्तर में यह भ्रम फैला दिए गए कि वेद समाज के एक वर्ग विशेष के लिए ही पठनीय हैं और समाज के एक दूसरे वर्ग विशेष के लिए तो इसका नाम तक लेना अपराध है। ऐसी ही भ्रान्त धारणाओं और मान्यताओं को बलिष्ठ करते जाने की चालाकियों से सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले इस भरत खण्ड, **भारत** के अब विघटन तक की नौबत आ पहुँची है। ऐसे में जब आपको अपना स्वयं का शुद्ध शाश्वत परिचय इस ग्रन्थ में मिलता है तो मानो आपका पुनर्जन्म सा होता है, जिसे आपका 'द्विज' होना ही कहा जाएगा, "जन्मना जायते शूद्राः संस्कारात् द्विज उच्यते"

की उक्ति आप पर चरितार्थ हो उठती है। जब तक आपको अपना स्वयं का सही परिचय नहीं मिलता, भला आप याज्ञवल्क्य, बाल्मीकि, वशिष्ठ, विश्वामित्र और नारद जैसे ऋषियों का परिचय क्या पाएंगे?

चाहे कथा राम की हो या कृष्ण की, दोनों का उद्देश्य एक ही है, वेदों के रहस्य को सरलतम तरीके से आपके पास पहुँचाना, आपको अपना जीवन दर्शन कराना और यह अहसास कराना कि इस सृष्टि के आप एक बहुमूल्य और जिम्मेदार अंग हैं, इस सृष्टि के संचालन, संवरण और संतुलन में आपकी एक अहम् भूमिका है। इसीलिए महाभारत आपके अन्दर चलता है तो राम–रावण युद्ध भी आपके ही अन्दर चलता है। राम कथा में जहाँ दसों इन्द्रियों को (रथ कर) निग्रह कर व्यक्ति दशरथ हो जाता है और (आत्मा) राम उसके (हृदय) आँगन में बसे हुए प्राप्त होते हैं वहीं यदि वह व्यक्ति दसों इन्द्रियों को दस मुँह (आनन) बनाकर सम्पूर्ण प्रकृति/सृष्टि का दोहन करने लगता है, अपना आहार बना लेता है तथाकथित सुखोपभोग में लिप्त हो जाता है तो वह दशानन (रावण) हो जाता है। कृष्ण कथा में (आत्मा) कृष्ण, जीव (जीव बुद्धि) अर्जुन के सारथी बनकर मायाओं के महासमर महाभारत युद्ध को जीतने का जो मार्ग प्रशस्त करते हैं, यह सब वेद, जो आपको अपने असली स्वरूप को प्राप्त करने का ज्ञान प्रमुखतः है, का ही सरलतम रूप से दिग्दर्शन है जो श्रद्धेय स्वामीजी की अमर वाणी उनके साहित्य के रूप में अक्षुण्ण रखे हुए है।

मन ही दशरथ और मन ही दशानन है, बिल्कुल एक दूसरे के विपरीत। जहाँ इन्द्रियाँ अर्न्तमुखी हुईं, दशरथ बना, राम को पाया। जहाँ इन्द्रियाँ वाह्योर्मुखी हुईं, सब सुख बाहर खोजा, लूटा खसोटा सचराचर को, अपने को ही केन्द्र में रखा, सबको अपना अनुचर बनाने की प्रकृति जगी तो मन दशानन हो गया।

मन क्यों दशानन होना चाहता है? क्योंकि उसके पास सोने की लंका है? उसके पास अकूत धन सम्पदा है? अपार बहुमूल्य और सैन्य बल है? भोगने के लिए राक्षसियों से लेकर अप्सरायें तक है? .....बहुत बड़ा अपराजेय राजा है? संभवतः यह सब पाने की लालसा हमें दशानन बनने को प्रवृत्त करती हो। लेकिन हम एक बात भूलते हैं जो श्रद्धेय स्वामी जी बार बार हमें याद दिलाते हैं। "यदि रावण (दशानन) इतना! इतना!! कितना!!! बड़ा राजा है, योद्धा है तो दशरथ क्या भिखारी है? वह भी तो चक्रवर्ती सम्राट है, क्या नहीं है उनके पास? योद्धा ऐसे कि देवता भी उनकी मदद माँगते हैं? फिर दशानन मार्ग पर मन को क्यों ले जाना? दशरथ मार्ग पर आओ।"

दशानन मार्ग से दशरथ मार्ग पर मन कैसे आए? जैसे आए, वही तो साधना का मार्ग है जो श्रद्धेय स्वामी जी के अन्य अमर ग्रंथ 'साधना विज्ञान' में अपनी सम्पूर्णता में प्रकट हुआ है। जीवन के इन अनबूझे रहस्यों का उद्‌घाटन जहाँ श्रद्धेय स्वामी जी की अमर वाणी में होता हैं वहीं उनके प्रमाण हमें सचराचर में दिखाने का परिदृश्य भी स्वामी जी हमारे सामने उपस्थित करते रहते हैं। जो कुछ सचराचर

में सहज उपलब्ध नहीं हो प्रमाण के लिए, उसे जीवन में भी हम सामान्यतया प्रमाणिक, आदि और अनन्त समय तक चलने वाला, नित्य सनातन अवयव कैसे मान लेंगे? यह सचराचर की पारदर्शिता **'ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपानों'** में श्रद्धेय स्वामी जी के अलावा कोई और इस युग में प्रस्तुत कर सकता हैं, इसका गुमान भी मुझे नहीं है। अपितु यह संभवतः इस युग में एक स्वर्णिम अवसर है, सनातन दर्शन, वेद और अध्यात्म की सही राह पर चलने का, और यह आशीर्वाद स्वरूप श्रद्धेय स्वामी जी ने ही अवसर दिया है मुझे, कि मैं निमित्त बनूँ, **'ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान'** आप तक पहुँचाने के लिए ताकि आप सब स्वयं इस अमर ग्रंथ के पारायण के साथ ही जीवन और ज्योतिष के अनबूझे रहस्यों तक पहुँच सकें, उसके वास्तविक स्वरूप को जान सकें, अपने आपको पहचान सकें और हो सके तो अपने असली स्वरूप को पा सकें।

आप सब पाठकों को ईश्वरत्व प्राप्त हो, श्रद्धेय स्वामी जी का अनुग्रह और आशीर्वाद हो, दशरथ मार्ग हो आपका और उच्चतम ज्योतिर्मय जीवन हो आप सबका।

राजेश्वरी शंकर

संपादिका

('द टाइम्स ऑफ एस्ट्रोलॉजी)

ज्योतिर्वेद की द्विभाषी मासिक पत्रिका

1009, इन्द्रप्रकाश बिल्डिंग, 21 बाराखम्बा रोड,

नयी दिल्ली – 110 001

फोन : 011–3717738, 011–3717743, 0522–769462

Email:*editor@thetimesofastrology.com*

अनुक्रम

• जीवन! एक पहेली!

जीवन एक अनबूझ पहेली है। युगों युगों से मानव, ऋषि एवं मनीषी विचारक सन्तजन इसका समाधान खोजने के सतत प्रयास में लगे रहे हैं। पहेली फिर भी अनबूझ पहेली ही है। प्रत्येक चिन्तक इससे जूझे बिना नहीं रह सकता। ईसा, मुहम्मद, बुद्ध और महावीर ने इसके रहस्यों को जानकर अथवा यूं कहें कि ' वे जान पायें हैं, ऐसा मानकर', उन महान विचारकों ने मानवता एवं समाज को अमृतमय बनाना चाहा। अपने अपने ढंग से इस अनबूझ पहेली को सुलझाना चाहा।

इनसे पहले तथा उपरान्त इस पहेली का सर्वमान्य सन्देहरहित उत्तर खोजने के प्रयास निरन्तर होते रहे हैं तथा हो रहे हैं।

आदिवेद, ब्राम्हण, आरण्यक, संहितायें, उपनिषद, पुराण, शास्त्र एवं परम्पराओं का प्राक्टय भी इसी पहेली के स्पष्टीकरण ही हैं। धर्म की कल्पना के मूल में भी यही पहेली है। सृष्टी के रहस्यों को जानने की उत्कन्ठा ने ही नाना ज्ञान विज्ञान को प्रगट किया। मैं कौन हूं? क्यों हूं? यह सृष्टी क्या है? कौंन इसे बना रहा है तथा किस उद्देश्य से बना रहा है? सबकुछ जानने की उत्कट जिज्ञासा ने समय के अन्तरालों में, नाना सम्प्रदायों (फिरकों) को जन्मा। युगों के अन्तरालों में सम्प्रदायों ने धर्म का स्वरूप ग्रहण कर मानव खोज की दिशा को ही बदल डाला। साम्प्रदायिकता (फिरकापरस्ती) से भ्रमित दिग्भ्रमित मानवसमाज बंटने लगे। धर्म के नाम पर हिंसक हो उठे। घृणा ने राजनीति के अस्त्र का रूप पाया। सम्पूर्ण विश्व धर्म को भूलकर साम्प्रदायिकता को ही धर्म मान बैठा। धर्म, धर्म की मूल कल्पना तथा धर्म के मूल उद्देश्य गौण होकर लुप्तप्राय हो गये। खोज की दिशायें भ्रमित हो गयीं। क्या धरा का मानव पुनः खोज की उसी दिशा की ओर बढ़ना चाहेगा?

विज्ञान का सर्वमान्य सूत्र है कि पहले खोज की दिशा की कल्पना की जाये। पुनः शोध द्वारा उस काल्पनिक अनुमान को सही अथवा गलत

सिद्ध किया जाये। पुनः नये पूर्वानुमान तथ्य और प्रमाण की कसौटियों पर उभारे जायें। किसी भी वैज्ञानिक खोज की यही प्रणाली है। धर्म को भी इसी मार्ग का अनुसरण करना था। धर्म स्वयं में सम्पूर्ण विज्ञान की जननी है तथा महाविज्ञान है। यदि हम अतीत के अन्तरालों में झांककर देखें तो उन युगों के वैज्ञानिक ईसा की हैवेन, मुहम्मद का बाहिश्त, सनातन ग्रन्थों का स्वर्ग, खोज की दिशा के निर्देश ही मसीहा, पैगम्बर, दार्शनिक, सन्त मनीषी ऋषियों ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया था।

तीन सूरा, तीन ट्रम्पेट दिशा खोजने के प्रयास के अंग ही हैं। बुद्ध का महाप्रयाण, अनात्मवाद भी इसी अथक खोज के प्रयास हैं। इसी प्रकार समय के गम्भीर अन्तरालों में विज्ञान जगत निरन्तर इस महापहेली का हल खोजने के सतत प्रयास में नाना दिशाओं में प्रयासरत रहा है। ब्रम्हाण्ड की खोज, ग्रहों पर मानव का पदार्पण, उपग्रहों का निर्माण तथा पृथ्वीकक्षा में उनकी सफल स्थापना एवं संचालन, जीवनपहेली की खोज के अथक प्रयास हैं। प्रकृति ने मनुष्य को बुद्धि तथा विवेक से वरद किया है। उसे जिज्ञासा, सोचने समझने की विलक्षण प्रतिभा से समुन्नत एवं वरद किया है। स्वयं को जानने की तड़प, अतीत को स्पष्ट एवं सन्देहरहित रूप से पहचान कर जीवनपहेली को हल करने की इच्छा, मानव योनि का प्रकृतिप्रदत्त बहुमूल्य आभूषण एवं वरदान है। यही मनुष्य एवं पशु का भेद है। पशु में सोचने समझने की स्पष्ट विवेकबुद्धि नहीं होती। उसकी प्रतिक्रिया सहज पशुवत तत्क्षण तथा विवेकशून्य होती है। परन्तु, मानव यदि मानव है तो निश्चय ही वह जीवनसंसार के प्रत्येक कोने से स्पष्ट सुपरिचित होना चाहेगा ही। अपने अतीत से अनभिज्ञता उसे व्यथित अवश्य करेगी और वह खोज करेगा चाहे उसके परिणाम मिलें अथवा नहीं। उसकी खोज तबतक जारी रहेगी जबतक उसे समुचित सन्देहरहित उत्तर न मिल जायें।

एडम और ईव की कहानी, किस्सा आदम और हव्वा का, मनु और शतरूपा की कथा, निरन्कार की व्याख्या अथवा नास्तिकवाद की चर्चा

सभी एक ही खोज के उपक्रम हैं। इसी खोज की बहुमूल्य सम्पदा को मात्र इसलिये भुला दिया गया कि वे साम्प्रदायिक विचार भर हैं? हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि विचार अथवा खोज कभी भी साम्प्रदायिक नहीं होते। साम्प्रदायिकता समय के साथ उनपर हावी हो जाती है। ईसा, मुहम्मद हों अथवा गम्भीर पूर्वकाल के ऋषि मनीषी जन, वे सभी इस महान खोज के वन्दनीय वैज्ञानिक हैं। ज्योतिर्वेद इस खोज का महानतम ग्रन्थ है जिसे समय की धूल ने ढक दिया है।

भूतकालीन वैज्ञानिकों (जिन्हें साम्प्रदायिकता एवं धर्मान्धता की छाप लगाकर भ्रमित करने तथा उनके प्रयासों से सभ्य समाज को सशंकित करने की मनोवृति तथा राजनीति के कारण) की अनुपम खोज को यदि उन्हीं के दृष्टीकोण अथवा वर्तमान वैज्ञानिक मान्य विधा में भी देखें तो बहुमूल्य सम्पदा हमारे सामने स्पष्ट हो जायेगी। किसी भी समस्या के उत्तर के लिये हमें समीकरण बनाना पढ़ता है। उसमें एक अनुमानित मूल्य की काल्पनिक व्यवस्था करते हैं। जैसे माना 'य' बराबर इतने आदि। यही समीकरण (मुनंजपवद) हमें समाधान देगा। अतीत के युगों के वैज्ञानिक जिन्हें मसीहा, पैगम्बर, ऋषि, अवतार आदि नामों से जाना गया, उन्होंने भी इन्हीं समीकरणों का सहारा लिया था। इसे व्यवहारिक रूप में देखें।

G (Generator) + O (Operator) + D (Destroyer) =GOD =OM = ALLAH

।सपप्ि स्ंउ भ्ल त्र ।स्स।भ्

अ् : उ् : म .... ओम।। अ....से अस्तित्व....। उ.... से... उत्पत्ति ....। म....से मृत्यु मृत्युन्जय ...।

अग्निमीले पुरोहितम् यज्ञस्यदेवंऋत्विजम्। होतारम् रत्नधातमम्।।

ऋग्वेद की पहली ऋचा में इसे स्पष्ट किया गया है। अग्नियों के अधिपति (अग्निम्) प्रलय के देवता महाशिव की स्तुति (ईले) करें तथा सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं के जनक परंब्रम्ह (पुरोहितम्) की स्तुति करें एवं यज्ञों के

अधिष्ठाता महाविष्णु (यज्ञस्यदेवं) की स्तुति करें। ये ही हैं मृत्यु से पुनः जीवन देने वाले (ऋत्विजम्)। निरन्तर यज्ञों के द्वारा ये ही न्योछावर (होतारम्) करते जीवन की स्वर्ण (रत्नधातमम्) उपलब्धियां तथा जीवन के बहुमूल्य क्षण।

क्या खोज की इस दिशा को सहज ही नकारा जा सकता है? क्या ये पूर्ण वैज्ञानिक समीकरण की परिभाषा नहीं है? महाभारत महाकाव्य में 'ईश्वर' की परिभाषा वेदव्यास ने स्वयं एक पात्र के रूप में इसप्रकार की है... 'ईश्वर शब्द की व्युत्पत्ति ऐश्वर्य से हुयी है। जो प्राणीमात्र को ऐश्वर्य प्रदान करे स्वयं को भुलाकर, अर्थात इच्छारहित होकर..... उसे कहते हैं ईश्वर।' इस व्याख्या से सहज स्पष्ट हो जाता है कि यहां भी ईश्वर खोज के समीकरण का पूर्व अनुमानित मूल्य ही है। ईश्वर घटघटवासी है। समीकरण भी तो हम सबमें व्याप्त है। फिर समीकरण का अनुमानित मूल्य पहेली से कटकर अलग कैसे हो सकता है? उसे सबमें व्याप्त होना ही पड़ेगा। यह तथ्य ही अवतारवाद के मूल में समाया हुआ है। परमात्मा अथवा परमेश्वर के लीलावतार की व्यापक लीला कथाओं में प्रभु धरती पर जन्म लेते हैं। यदि परमात्मा में से परम को निकाल दिया जाये तो जो बाकी बचेगा वह हमारा समीकरण का पूर्वानुमानित मूल्य ही तो है। परमात्मा से परम निकाला तो बाकी बचा वह है......'आत्मा'। आत्मा ही अतीत के विज्ञान का 'य' है। आत्मा ही परमात्मा का लीलावतार है तथा घटघटवासी है। सम्पूर्ण सचराचर का जनक है तथा सबमें व्याप्त है। आत्मा को ही ओम कहा गया है। आत्मा अजर अमर अविनाशी है। सृष्टी का मूल है। यज्ञों का अधिष्ठाता है। एक विशुद्ध पूर्ण वैज्ञानिक समीकरण।

सृष्टी है कहां? सृष्टा है जहां! यही अतीत के युगों का महानाद है। सृष्टी अर्थात उत्पत्ति देह के भीतर हो रही है। शिशु वहीं बनता है। अन्न भी वृक्ष के भीतर से बनकर आता है। समीकरण का अन्तिम हल भी वहीं मिलेगा। चलो भीतर चलें। पाठशाला में इतिहास पड़ने के लिये छात्र को मरकर अतीत के युगों में नहीं भटकना पढ़ता। कक्षा में बैठा पुस्तक में ही पड़ लेता है। भूगोल के लिये पृथ्वी की परिक्रमा करने नहीं चल देता।

पुस्तक में ही पा लेता है। यदि वह इसके विपरीत आचरण करेगा तो मूर्ख कहलावेगा। पाठशाला से निकाल दिया जावेगा। जीवनपहेली का उत्तर भी हमें अपने भीतर ही खोजना होगा। हम अन्तर्मुखी हों। स्वयं को सूक्ष्मता से पढ़ें। यही हमारी खोज की दिशा हो।

विज्ञान की निरन्तर अथक खोज को भी अनदेखा नहीं कर सकते। डारविन की खोज, बिगबैगं की
की ग्रहों के अस्तित्व को जानने की अभिलाषा, प्रकृति में अपने होने के कारण खोजते सनातन ग्रन्थ मानव की तड़प के स्पष्ट प्रमाण हैं। जब जब लगंता है कि पहेली के उत्तर के समीप मानव पहुंच गया है। उसे उत्तर मिल गया है। तभी परिस्थितियां नया मोड़ लेकर सम्पूर्ण उपलब्धियों पर प्रश्नचिन्ह लगा देती हैं। हम स्वयं को वहीं खढ़ा हुआ पाते हैं जहां से चले थे हम। जीवनपहेली के रहस्य सुलझते ही नहीं हैं। मानव ने कभी हार नहीं मानी और मानव कभी हार मानेगा नहीं। अपने अस्तित्व की खोज में तो कदापि नहीं। युग आयेंगे, युग जायेंगे। सत्युग, त्रेता, द्वापर कलियुग बारम्बार आते रहेंगे। मानव की खोज रूकेगी नहीं, मानव कभी थकेगा नहीं।

फिर एक त्रेता की दहकती सुबह कोई सरयु में प्रवेश करेगा। फिर सरयु की शीतल लहरें आग का लावा उगलेंगी और सरयु के पार कोई अग्निवेश प्रकट होगा। जीवनपहेली की खोज फिर युवा होगी। फिर हवाओं में गूंजेगी श्रीराम की कहानी, सुनेगा समय विस्मित होकर। रे तापस! रे योगी! चल उन्हीं राहों पर! जिन राहों पर गये, नाना सन्त ऋषि सन्यासी तपस्वी मनीषीजन।

<u>नारायण हरि! गेविन्द हरि !!</u>

× × ×

• ज्योतिर्वेद

अतीत के गम्भीर अन्तरालों में, समय की अनन्त गहराईयों में सोये हुए हैं ज्योतिर्वेद के महान रहस्य। जीवनपहेली को सुलझाने वाले सूत्र। एक कहानी जीवन की, बहुत से पन्ने सृष्टी गाथा के। कुछ जाना सा और बहुत कुछ अनजाना विस्मयकारी रहस्य और रोमाचं से भरपूर! अतीत की गहराईओं को वर्तमान की धरती पर तथ्यों एवं प्रमाणों के साथ जीवन्त करना। वर्तमान युग के विज्ञान तथा मान्यताओं के सर्वथा विपरीत लुप्त हो गये ज्ञान विज्ञान के बिखरे हुये तन्तुओं को तिनका तिनका करके जोड़ना, उसके साख्य प्रमाण को ढूड़कर पुनः पहचानने योग्य बनाना, सम्भावनाओं को जीवन्त करना एवं खोज निकालना, उन्हें स्पष्ट करना, यदि असम्भव नहीं तो सरल तो कदापि नहीं है।

ज्योतिर्वेद तथा मनुस्मृतियों का लोप श्रीकृष्ण एवं वेदव्यास के समय से युगों पूर्व हो चुका था। इसकी व्यापक चर्चा महाभारत महाकाव्य तथा श्रीमद्भगवद्गीता में हुई है। ज्योतिर्वेद के सिद्धान्तों पर चारों वेदों का पुनर्प्राक्टय हुआ है। इसे वेदव्यास तथा समकालीन ऋषि मनीषीजन निर्विवाद रूप से स्वीकारते हैं यथा संहिताओं में। वेदव्यास के कथनानुसार,' ज्योतिर्वेद की सहस्त्रों शाखाओं का विध्वंस इन्द्र ने करवा दिया है। मैं, वेदव्यास वेद की कुछ शाखाओं का पुनर्प्रतिरोपण वेदत्रयी के रूप में कर रहा हूं।'

वेदादिक अमृत ग्रन्थ लुप्त क्यों हुये? जीवन उत्पत्ति के मूल में कौन से रहस्य छिपे हुये हैं? इन सब को स्पष्ट करने के लिये हमें भी उसी वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण पूर्व के ऋषि वैज्ञानिकों की भांति करना होगा। सर्वप्रथम हम सम्भावना कथा की कल्पना पूर्वानुमान के रूप में

करेंगे। पुनः उस सम्भावना के पक्ष अथवा विपक्ष के तथ्य एवं प्रमाण खोजने के प्रयास करेंगे। तर्क और प्रमाण की कसौटियों पर कसने के उपरान्त ही उत्तर खोजने के प्रयास करेंगे। वेदादिक ग्रन्थों की मान्य कथा को ही पूर्वानुमान कथा का रूपक प्रदान करें।

जीवन स्वतःस्फूर्त होता है अथवा किसी मान्य सत्ता द्वारा प्रदान किया जाता है? जीवन के विभिन्न स्तरों पर दोनो ही पद्धतियों द्वारा जीवन की उत्पत्ति सम्भव है, ऐसा वेद ने माना। उत्पत्ति का मूल क्या है?

ॐ ऋतन्च सत्यन्चाभीद्वातपसो अध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवंतसरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्यमिशतो वशी। सूर्यचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवन्च पृथ्वीन्चान्तरिक्षमथो स्वः।।............ज्योतिर्वेद।।

ऋत और सत्य ने सृष्टी की कल्पना की। ऋत (आत्मा) और सत्य (प्रकृति, जीव) आकाश में मिले। दोनो एक दूसरे पर सम्मोहित हुए और प्रणयसूत्र में बन्ध गये। उनकी प्रेमलीला से शान्त अव्यक्त, अन्धकार में डूबा अन्तरिक्ष ज्योतिर्मय हो उठा। उनकी हंसी और खिलखिलाहट से ज्योतिर्मय अन्तरिक्ष झिमिलाने लगा। ग्रह नक्षत्र सितारों के प्रकाश से आकाश जगमगाने लगा। उन्हीं की प्रणय परिणिति से पृथ्वी सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह प्रकट हुए। उन्होने भी ऋत और सत्य की प्रणयलीला का अनुसरण किया। वे भी प्रणय सूत्र में बन्धे मुग्ध भाव से परिक्रमाओं को प्राप्त हुए। उनकी प्रणय परिक्रमाओं से संवतसर (काल, समय) उत्पन्न हुए। दिन और रात जुड़वा संतति के रूप में प्राप्त हुए। ऋत और सत्य की निरन्तर प्रणय लीला का सचराचर अनुसरण करने लगा। धरा वसुन्धरा हुई। जीवन की प्रेमधारायें हर ओर प्रवाहित होने लगी। पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा नाना प्रकार के जीवधारी प्रकट होने लगे तथा हो रहे हैं। जीवधारियों ने अपने नियन्ता सत्य एवं ऋत की प्रणय लीला का अनुसरण किया और वे सब यथा संतति से वरद होने लगे। हो रहे हैं और होते रहेंगे।

प्रश्न उठता है प्रणयलीला द्वारा उत्पत्ति की प्रक्रिया क्या है? उसका वैज्ञानिक आधार क्या है? उत्पत्ति किस प्रकार होती है? साधारणतया लोग तो यही समझते हैं कि एक ही प्रजाती के दो विपरीत लिंगों का समागम (मैथुन) ही इसका मूल कारण है। जबकि अटल सत्य मात्र यही है कि जीवधारी केवल उत्पत्ति का माध्यम भर हैं। उन्हें शरीर का एक कोश (बमसस) बनाना भी नहीं आता। माता अथवा पिता अपने शरीर का एक अंग भी नहीं बना सकते। पेढ़ पौधे भी खाद अथवा मिट्टी से अन्न का एक दाना बनाना नहीं जानते। सम्पूर्ण जीवधारी उत्पत्ति के निमित्त मात्र हैं, उत्पत्ति कर्त्ता कदापि नहीं। फिर उत्पत्ति का रहस्य क्या है? एक लघु उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट करें।

हलवाई लड्डू बनाता है। इस प्रक्रिया में वह कुछ पात्रों, बरतनों का प्रयोग करता है। कुछ वस्तुओं, पदार्थो के संयोग से तथा अग्नियों के संतुलित प्रयोग से लड्डू बने। प्रश्न उठता है, लड्डू किसने बनाये तथा लड्डुओं की पहचान क्या हो? क्या बरतनों ने लड्डू बनाये? नहीं! बरतन तो निमित्तमात्र हैं। बनाने वाला हलवाई है। क्या लड्डूओं को बरतन पहचान प्रदान कर सकते हैं? यथा वंश, नाम, गोत्र इत्यादि? आप हंसेगे! भला लड्डूओं को बरतन पहचान कैसे दे सकते हैं, वे तो निमित्तमात्र हैं! लड्डूओं की दो ही पहचान हो सकती है, अमुक हलवाई तथा अमुक वस्तु। ठीक? मुझे बनाने वाला कौन है? घट में व्याप्त आत्मा (ऋत) अथवा बरतन भर (निमित्तमात्र) माता पिता? लड्डूओं की भांति ही मेरी पहचान क्या हो? मेरा नाम पता और गोत्र किससे हो तथा क्या हो? साधारणतया लोकाचार व्यवहार में मुझे निमित्तमात्र ही नाम गोत्र वंश आदि प्रदान करते हैं। सही क्या है?

ज्योतिर्वेद ने कहा आत्मा ही सचराचर का इकलौता जनक है। यज्ञों के द्वारा आत्मा ही सबको उत्पन्न करता हैं। आत्मा ही हलवाई है। आत्मा ही परमात्मा (परम्+आत्मा) का लीला अवतार है। यही सम्पूर्ण लीला कथाओं का महानायक है। परमेश्वर भी लीला अवतार में आत्मा की कथा के रहस्यों को प्रकट करते हैं। यज्ञ के द्वारा सचराचर प्रकट जीवन्त होता है। यज्ञ शब्द दो अक्षरों का युगल रूप है, यथा 'य' एवं 'ज्ञ'। वैदिक

वांग्मय में प्रत्येक अक्षर में निहित अर्थ समाहित रहता है। जैसे अक्षर शब्द का निहित भावार्थ है, जो कभी क्षर (नष्ट) न हो। 'य' का अर्थ है उत्पत्ति तथा 'ज्ञ' का अर्थ है, ज्ञात अथवा प्रकट होना। इसकी विस्तृत व्याख्या अमरकोश तथा कौस्तुभ में है।

यज्ञ से साधारतया आप एक हवन अथवा एक वाह्य कर्मकाण्ड की कल्पना करते हैं। आपकी कल्पना में एक वेदी उभरती है। उसके चारों ओर कुछ भक्त हवन सामिग्री लेकर बैठे हुये हैं। वेदी में समिधाओं द्वारा अग्नि प्रज्जवलित हो रही है। भक्त समुदाय मंत्रोच्चार करता सामिग्री को ज्वालाओं में अर्पित कर रहा है। यज्ञ हो रहा है। क्या यही यज्ञ है? जिससे सचराचर की निरन्तर उत्पत्ति होती है? कैसे?

ऋग्वेद प्रथम मंडल के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा ने यज्ञ के रहस्यों का अनावरण करते हुये इस प्रश्न का समुचित तथा सन्देहरहित उत्तर हमें दिया है। उनके अनुसार; आत्मा ही यज्ञ का अधिष्ठित देव है। आत्मा ही यज्ञ का प्रधान आचार्य है। प्राणवायु ही उपाचार्य है। सम्पूर्ण सचराचर यज्ञ की समिधा तथा सामिग्री है। ब्रम्हज्वाला (आत्माग्नि) ही यज्ञ की अग्नि है। जीवमात्र यजमान है। पहले पांच सूत्रों में इसकी विशद व्याख्या है। इसी धारा का सम्पूर्ण वेदों ने अनुसरण किया है।

गुरूकुल में छात्रों को पढ़ाने के लिये प्रतीकात्मक रूप से वाह्य यज्ञों का सहारा लिया जाता थां। जैसे आधुनिक शिक्षा में भी प्रतीकों के माध्यम से अध्यापक छात्रों को अक्षर ज्ञान कराते हैं। यथा, कबूतर से 'क', खरगोश से 'ख', गाय से 'ग' इत्यादि। वाह्य यज्ञों का प्रतीक भर ही महत्व रहा हो, ऐसा भी नहीं है। वाह्य कर्मकाण्डीय यज्ञों का बहुकोणीय महत्व आंका गया है। वाह्य जगत के मिथ्या भावों आसक्तियों को सामिग्री के साथ बाहर भस्म कर, बाह्य जगत से निर्लिप्त हो आत्मा रूपी यज्ञ की अग्नियों में प्रवेश कर देवयान से अनन्त की ओर गमन करना। इसकी व्यापक चर्चा श्रीमद्भगवत्गीता में, सम्पूर्ण वेदों में तथा प्राचीन लगभग सभी ग्रन्थों में मिलती है। यज्ञों की मूल भावना, उत्पत्ति के रहस्य कैसे लुप्त हो गये

तथा यज्ञ का ज्ञान केवल कर्मकाण्ड भर रह गया, यह एक गम्भीर शोध का विषय है।

यज्ञ की इस अन्तर्दृष्टि से यदि हम चहुं ओर दृष्टीपात करें तो हमें यज्ञ से सृष्टी के प्रमाण हर ओर दृष्टीगोचर होने लगते हैं। सड़ी हुई मिट्टी, खाद, किसी के जले हुये तन की भस्मी, आत्मा अदृष्य के यज्ञों द्वारा पुनः वनस्पतियों में उत्पन्न हो रही है। यज्ञों द्वारा उत्पन्न वनस्पतियां, नाना जीवधारियों की देहों में यज्ञों द्वारा यथा संतति में उत्पन्न हो रही हैं। अतीत के वैज्ञानिकों की जीवन पहेली की खोज की दिशा, कुछ कुछ स्पष्ट होने लगी है। इसके समीकरण तथा पूर्वानुमानित मूल्य (य) खुलने लगा है। यूंही हम सब बारम्बार जन्म लेते रहे हैं। पावन मधुच्छन्दा की युगान्तर वाणी में, ऋग्वेद के प्रथम सूत्र में:-

- **यदङ्दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।**
- **तवेत्त सत्यमन्गिरः।।१/१/१/६।।**

(यत् अंग) जिस किसी भी अंग को धरा के (दाषुशे) जलाते हैं, यज्ञ करते हैं (त्वम् अग्ने) आप हे!अग्ने! (भद्रं करिष्यसि) कल्याण करते उसका (तवेत् तत्) आपकी ही उस प्रकृति का, अर्थात जिस प्रकृति की आत्मा होकर आप उसकी देह में यज्ञ करते हैं, यज्ञ की हुई प्रकृति यथा देह का (अंगिरा) अंग हो जाती है। न जाने कितनी कितनी बार हम यूंही लौटते रहे हैं। लौटते रहेंगे! जीवन की इस अनबूझ पहेली को सुलझाने में उलझते रहेंगे!

यज्ञ से उत्पत्ति की अवधारणा के साथ ही ज्योतिर्वेद ने जीवन की कुछ स्पष्ट अन्य कल्पनायें भी की थी। मृत्युलोक (पृथ्वी आदि) की चौरासी लाख योनियों के अतिरिक्त अमर नित्य जीवन की भी व्यापक कल्पना वेदादिक ग्रंथों में मिलती है। वेद ने मरणशील जीवन को नाटयशाला का मंचन भर माना है। सत्य नित्य जीवन से पूर्व का पूर्वाभ्यास मात्र ही

मरणशील संसार है। मानव जीवन भी नाटयशाला का एक रूपहला नाटक भर है। इसी मान्यता को लीलाकथाओं में भी दर्शाया गया है। गुरुकुल शिक्षा में छात्रों को उनके जीवन का स्पष्ट ज्ञान दर्शन इन्हीं लीला कथाओं द्वारा कराने की अवधारणा के प्रमाण व्यापक रूप से सर्वत्र मिलते हैं। दश (दस) इन्द्रियों को रथ (बान्धना, लगाम में कसना) कर ही मेरा मन दशरथ बनता है। दश इन्द्रियां जब दश मुहं बन आसक्तियों के पीछे भागने लगती हैं तो मेरा मन मुझे दशानन रावण बनाकर विषान्ध संसार में भटकाने लगता है। अमर आत्मा मेरा श्रीराम है तथा जीवरूप हम सब जानकी सीता हैं, प्रकृति हैं। हल के सीत (हल के आगे का नोकीला फल) से धरती से अन्न बने तथा अन्न से मानवरूप में जन्मे। कथा के सारे पात्र मेरे ही जीवन की संगतियां और विसंगतियां हैं, नाना भाव विचार, आचरण तथा अच्छे बुरे आचरण स्वभाव के प्रतीक हैं। अपने आराध्य की कथा में स्वयं को मथता, स्वयं को मांजता, अपने आराध्य की लीला का अनुसरण कर स्वयं को आराध्य सा बनाकर, चल देता मैं अनन्त की ओर!

श्रीकृष्ण की लीला कथा में भी छात्र स्वयं को ही जानने का प्रयास करता था। शरीर एक जेल है। मिथ्याभिमानी मन राजा कंस है। वसु (अग्नि) देव (देवता) मेरा आत्मा है। देवकी (बम्हज्वाला) आत्मा ब्रम्ह की पत्नी है। प्रत्येक शिशु इस शरीर रूपी जेल में आत्मा तथा ब्रज्वालाओं द्वारा ही ढाला जाता है। आत्मा रूपी वसुदेव तथा अग्नि रूपी देवकी ही प्रत्येक बालक की मात्र जननी है। जब शिशु प्रकट हो जाता है तब जिन्हें संसार माता पिता के रूप में जानते हैं, वे केवल नन्द और यशोदा की भांति केवल लालन पालन ही करते हैं। उन्हें तो शरीर का एक कोश भी बनाना नहीं आता। हम सब वसुदेव (आत्मा) तथा देवकी (अग्नि) की ही सन्तान हैं तथा जिन्हें हम माता व पिता के रूप में जानते हैं, वे सब नन्द और यशोदा की भांति हैं। जगत एक मंच है तथा हम सब इस नाटयशाला के कलाकार हैं। अपने अपने किरदार निभाने आये हैं। हम सब जीवन भर लीला ही करते हैं। सर्वत्र निरन्तर घट रही सबकी कहानी ही लीला कथा है। हम सब कथा के पात्र मात्र हैं।

क्ल्पना करें आप मंच पर नाटक करने आये हैं। रामलीला कमेटी ही आपको वस्त्र, आभूषण, अस्त्र शस्त्र, सज्जा, मेकअप आदि प्रदान करती है। अभिनय के संवाद तथा अभिनीत करने का व्यवहारिक ज्ञान में पारंगत भी वे ही करते हैं तथा उन्हीं के आदेश इच्छा को आप अभिनीत करते हैं। अभिनय के उपरान्त आपको सारे परिधान तथा सामिग्री नाटक कमेटी को लौटानी पढ़ती है। आप अपने साथ नहीं ले जा सकते। ठीक इसी प्रकार जगत लीला में भी आप अपने साथ न तो कुछ लेकर आते हैं तथा नाही कुछ ले जा सकते हैं। आपको अपना शरीर रूपी वस्त्र भी त्यागकर ही जाना पढ़ता है। सबकुछ नाटयशाला की भांति ही।

जिसप्रकार नाटक मंचन से पूर्व कलाकार नाटक का पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करते हैं, अथवा सेना में जवानों को सीमा पर भेजने से पूर्व उन्हें व्यवहारिक ज्ञान तथा अभ्यास करवाना होता है, उसी प्रकार वर्तमान जीवन अनन्त की यात्रा का पूर्वाभ्यास भर है। वर्तमान अवस्था से उत्तीर्ण हुये बिना अनन्त की यात्रा कदापि सम्र्भव नहीं है। श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान श्री कृष्ण वीरवर अर्जुन को इसी अमृत ज्ञान का उपदेश करते हुये दो मार्गो की चर्चा करते हैं। एक सकाम मार्ग है जिसका पित्रयान है तथा दूसरा शुक्ल मार्ग है जिसका देवयान है। एक मार्ग में फिर फिर जन्म लेना पढ़ेगा तथा दूसरे मार्ग से अनन्त की राह मिलेगी। बात इस मनुष्य योनि में पास अथवा फेल होने की है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिये हमें ज्योतिर्वेद की वर्णाश्रम धर्म की आदिकालीन व्यवस्था तथा उसमें निहित सूक्ष्म विज्ञान को भली प्रकार स्पष्ट करना होगा।

ज्योतिर्वेद ने माना मनुष्य की योनि पाठशाला के छात्र जैसी है। सचराचर पाठय पुस्तक है। नाना योनियां इस पाठय पुस्तक के नाना अध्याय अथवा पाठयक्रम हैं, जिन्हें जीव रूपी छात्र यथा योनि पढ़ता परीक्षा (इम्तहान) के लिये मानव योनि में प्रवेश पाता है। मानव योनि पूरक परीक्षा के क्षण हैं। जिस प्रकार परीक्षा स्थल पर परीक्षक ही प्रश्नपत्र तथा उत्तरपुस्तिका छात्र को प्रदान करता है, उसी प्रकार आत्मा रूपी परीक्षक भी परिस्थितियों का प्रश्नपत्र तथा जीवन रूपी उत्तरपुस्तिका स्वयं जीव रूपी छात्र को प्रदान

करता है। मनुष्य की योनि परीक्षा के क्षण हैं। परीक्षा का समय जन्म से मृत्यु पर्यन्त है। जिस प्रकार परीक्षाफल तीन प्रकार का होता है, यथा उत्तीर्ण (पास) होगा अथवा अनुत्तीर्ण होगा, अथवा कुछ थोड़ी कमी के कारण उसे थोड़े समय उपरान्त पुर्नपरीक्षा में फिर से परीक्षा में आना होगा। इस जीवनपरीक्षा में भी जीव रूपी छात्र को इन्हीं अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ेगा। उत्तीर्ण होने पर अनन्त की राह है। फिर अवागमन में नहीं जाना होगा। उसे अगली कक्षा में प्रवेश मिलेगा, जो अनन्त की राह है। यदि उत्तीर्ण नहीं हो पाया और फेल हो गया तो उसे पुनः सारा पाठयक्रम दुहराने के लिये यथा योनियों से गुजरना होगा। उसके उपरान्त ही पुनः परीक्षा के लिये उसे मानव योनि में प्रवेश मिलेगा। अल्प त्रुटियों की अवस्था में उसे लगभग बारहा (१२) योनियों के उपरान्त ही पुर्नपरीक्षा हेतु मनुष्य की योनि प्रदान की जायेगी।

इसीलिये जब भी घर में शिशु का जन्म होता है, घर में सूतक (छूत) का वास होता है। मन्दिर, पूजा आदि सब बन्द कर दिये जाते हैं। बरहा (१२ दिन) मनाया जाता है। इसका पृष्ठ रहस्य यही है कि जन्मने वाला शिशु हमारा ही पूर्वज है। अल्प बिन्दुओं से रह गया था, फिर अपने घर लौट आया है। यदि चौरासी लाख योनियों से लौट रहा होता तो सर्वप्रथम उस कुल में जन्म ग्रहण करता जहां चौरासी लाख दिन छूत वास करती अर्थात किसी अज्ञानी (शूद्र) के घर जन्म पाता। बारहा योनि के प्रायश्चित ही भोगकर लौटा है इसीलिये तो विधाता ने उसे इस कुल में स्थान दिया है। जीवन रूपी नाटयशाला के सभी पात्र निर्देशक के आदेश पर ही चलते हैं, स्वेच्छा से कुछ कर नहीं सकते।

इसीप्रकार जब भी कोई व्यक्ति घर में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, अर्थात मर जाता है। घर में पुनः छूत वास कर जाती है। जन्म काल के बारहा दिन के सूतक में इस वर्तमान जन्म का एक दिन जुड़कर बारहीं से तेरहवीं बन जाता है। तेरहवीं पर्यन्त छूत वास करती है। एक जन्म फिर नष्ट हो गया। जाना था इसको शुक्ल मार्ग से, देवयान (आत्मा रूपी यान) से, सो यह जा नहीं पाया है। अब जायेगा पित्रयान (पेड़ों की लकड़ियों

से बनी चिता द्वारा) से, आवागमन की राह पर। जन्म काल की बारहा दिन की शूद्रता में इस जन्म का एक दिन जोड़कर इसे महाशूद्र घोषित करो। ले चलो गांव से बाहर श्मशान की ओर। जिन पेढ़ों के अन्नादिक कृपा से इसने मानव जन्म पाया था, आज उन्हीं की गोद में इसे लौटना होगा। जिन पित्रों की कृपा से आया था, आज फिर उसी पित्रयान पर लौट जायेगा। लक्ष्य पाया नहीं इसने। जीवन की पहेली, उत्पत्ति के रहस्य नहीं खोज पाया। जीवन नाटयशाला की पात्रता भी लुट गयी इसकी। जीवन यज्ञ के रहस्य नहीं जान पाया। जन्म व्यर्थ कर गया।

शरीर रूपी सामिग्री को आत्मज्वाला रूपी यज्ञकुण्ड में आत्मा आचार्य के प्रति, प्राणवायु रूपी उपाचार्य की साक्षी में, निरन्तर यज्ञ करते हुए, निष्ठापूर्वक अनन्य भाव से अद्वैत करना था। अमर आत्मा में जीव को नित्य व्याप्त कर अमर राह लेनी थी। चारों वेद, आद्योपान्त, समवेत स्वर में इसी मार्ग को ही गाते रहे हैं। इसे ही प्रशस्त करते रहे हैं।

ज्योतिर्वेद के मतानुसार वाह्य कर्मकाण्ड मानव शरीर की भांति है तथा आन्तरिक यज्ञ शरीर में व्याप्त आत्मा के सदृश्य है। किसी भी व्यक्ति को आप उसके शरीर द्वारा ही जानते हैं, आत्मा से परिचित तो नहीं होते? आत्मा न तो दिखती है तथा न ही कोई रूप अथवा पहचान ही है। शरीर ही उसका परिचय पत्रा है। शरीर द्वारा ही व्यक्ति जाना तथा पहचाना जाता है। परन्तु इस तथ्य को कैसे नकारा जा सकता है कि उसका अस्तित्व एवं व्यक्तित्व आत्मा द्वारा ही सम्भव है। आत्मा के शरीर से निकलते ही उसकी पहचान खो जायेगी। शरीर का अस्तित्व भी ढह जायेगा। पहचान वर्तमान से अतीत के अन्धेरों की ओर सरकने लगेगी। उसी प्रकार शरीर की भांति जो पहचान बना है, वह वाहय यज्ञादिक कर्मकाण्ड है, तथा जो आत्मा की भांति नित्य एवं सर्वसमर्थ तथा सृष्टी में सर्वसमर्थ है, वह वेदादिक प्रदत्त आन्तरिक यज्ञीय कर्मकाण्ड है। जहां आत्मा यज्ञ का आचार्य, प्राण उपाचार्य, तन तथा भोज्य सामिग्री यज्ञ की समिधा एवं हवन सामिग्री है। आत्मज्वाला ही यज्ञ की अग्नि तथा जीव ही यजमान है। यही सृष्टी का मूल है तथा इसी के द्वारा सचराचर की उत्पत्ति होती है तथा निरन्तर हो रही है। इन्ही सर्वव्यापी यज्ञों के द्वारा जीवन के क्षण प्रत्येक जीव को निरन्तर प्राप्त होते हैं।

ज्योतिर्वेद की शब्दावली से भी कुछ परिचित होते चलें। 'माया'! इसे अक्सर रहस्य अथवा चमत्कार के रूप में प्रयोग करते हैं। 'मा' तथा 'या' के समायोजन से बनता है। प्रत्येक के दो अर्थ हैं। 'मा' अर्थात 'नहीं' तथा 'या' अर्थात 'जो'। जो नहीं है उसे ही मानता हूं कि वह ही है। दूसरे अर्थ हैं, 'मा' अर्थात 'लक्ष्मी' तथा 'या' अर्थात 'जो'। इसका एक प्रयोग देखें :–
'माधव मा धव।' मा (लक्ष्मी) धव (पति) मा (मत) धव (दौड़ो)।
सनातन धर्मग्रन्थों में माया का अर्थ गुरूत्वाकर्षण शक्ति है। सम्पूर्ण उपलब्ध वेदादिक ग्रन्थों में भी माया को गुरूत्वाकर्षण शक्ति (हतंअपजल) के रूप में लिया गया है। माया ही जीव की उत्पत्ति तथा मृत्यु का मूल कारण है। पुनः दो ध्रुवों के मध्य का आकर्षण तथा विकर्षण माया है। दो जीवों के मध्य प्रेम, आसक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आदि माया है। इसी प्रकार दो ग्रहों के मध्य का आकर्षण भी माया है। 'माया दुई परकार की जो कोई जाने पाये। एक मिलावे राम सों दूजी नरक लै जाये।'–सन्त कबीर।
दूसरा शब्द जिसे जाने बिना सृष्टी के रहस्यों को जानना कठिन होगा, वह हैः– क्षीर सागर। क्षीर अर्थात दूध अथवा दूध से बनी खीर। सागर का अर्थ हैः– समुद्र। परन्तु क्षीर सागर का अर्थ वेद में जो लिया गया हैः– मायारहित क्षेत्र। वह स्थान जहां माया का प्रवेश सुलभ न हो। Space or gravity free zone । वेद ने आकाश को मायारहित मानते हुये क्षीर सागर की संज्ञा प्रदान की। इसके साथ ही वेद ने माता के गर्भ तथा प्रत्येक उत्पत्ति के स्थान को क्षीर सागर की संज्ञा प्रदान की है। आश्चर्य तथा अनुसंधान का विषय है कि वेद ने मानव मस्तिष्क को भी क्षीर सागर माना है। वेद के अनुसार :– यत पिण्डे। तत् ब्रम्हाण्डे। इस सिद्धान्त सूत्र में मस्तिष्क को क्षीर सागर की संज्ञा प्रदान की गयी है।

क्षीर सागर के बिना उत्पत्ति नहीं तथा माया के बिना उत्पत्ति की अभिव्यक्ति नहीं। ज्योतिर्वेद की इस उक्ति की चर्चा अतीत के युगों में व्यापक रूप से मिलती है। सूक्ष्म ब्रम्ह (Atom) की कल्पना भी वेद की अनूठी है। वेद के अनुसार सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दुओं का स्वरूप एक ही है। इनसे ही सम्पूर्ण जड़ चेतन सचराचर निर्मित होता है। 'एको ब्रम्ह द्वितीयोनास्ति।'

इन ब्रम्ह बिन्दुओं को बनाने वाले ब्रम्हा हैं। इनसे सचराचर की संरचना करने वाले भी ब्रम्हा ही हैं। इन्हीं ब्रम्ह बिन्दुओं से जीवन्त सचराचर के पालनहार तथा रचयिता विष्णु हैं, तथा जीवन के निष्क्रिय होने की अवस्था में इन्हें पुनः क्रियाशील अवस्था के योग्य बनाने के लिये प्रलय द्वारा इनका संहार करने वाले शिवशंकर हैं। एक ही सत्ता के तीन त्रिगुणात्मक रूप हैं। जीवन पहेली के समीकरण के तीन अक्षर हैं, धारण + सृजन पालन + संहार।। ॐ को समीकरण का मूल माना गया है। ॐ में तीन अक्षर हैं, यथा अ् + उ् + म। ब्रम्हा विष्णु तथा महेश शिव शंकर। इसी समीकरण के अनुरूप ही गाड (GOD) तथा अल्लाह में भी तीन अक्षर हैं। क्या आप इसे मात्र संयोग ही मानेगे?

वेद ने ईश्वर को घट–घट वासी माना है। 'सृष्टी है जहां सृष्टा है वहां। चूंकि सृष्टी का मूल सूक्ष्म ब्रम्ह में निहित है, सृष्टा की अन्यत्र कल्पना कैसे हो सकती है? कालान्तर में भक्त की भोली कल्पनाओं ने जब सम्प्रदायों के वस्त्र ओड़े तो ईश्वर को नाना लोकों से सम्मानित किया हो?

सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दुओं के स्वरूप की विषद् व्याख्या भी ज्योतिर्वेद में मिलती है। वेद के अनुसार प्रत्येक सूक्ष्म बिन्दु के मध्य भाग में क्षीर सागर सदा विद्यमान रहता है। इसीसे सूक्ष्म ब्रम्ह अमर है। इसी के कारण सूक्ष्म बिन्दु जीवन्त सृष्टी की योग्यता को प्राप्त होता है। इसमें दो ध्रुव होते हैं :– विष्णु तथा लक्ष्मी। शिव तथा पार्वती। ब्रम्हा तथा सरस्वती।। आवश्यकता तथा प्रभाव के अनुरूप इसकी संज्ञा बदलती रहती है। दोनो ध्रुव एक दूसरे के पूरक, सर्वशक्तिमान तथा अमर हैं। किन्नर, गन्धर्व इनके चहुं ओर परिक्रमा करते हुए गायन, नृत्य एवं संगीत द्वारा इनका मनोरंजन करते रहते हैं। देव, यक्ष सिद्ध ऋषिगण निरन्तर स्तुतिगान करते हैं।

वैदिक मान्यता के अनुसार सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दु अविभाज्य है। जबभी माया का प्रभाव इसके अस्तित्व को चुनौती देने लगता है, सूक्ष्म बिन्दु उसके प्रभाव को निरस्त्र करने के लिये विकराल रूप धारण करता, उग्र से उग्र होने

लगता है। अपने स्वरूप को बढ़ता, क्षीर सागर का विस्तार करता सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का विध्वन्स करने की सामर्थ्य रखता है। इसका वर्णन श्रीमद्भगवत्गीता के विराटस्वरूप दर्शन में भी परोक्ष रूप में हुआ है।

एक ही प्रकार के सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं से नाना प्रकार के पदार्थों, यौगिकों, धातुओं, अवयवों आदि की उत्पत्ति किस प्रकार सम्भव है? एक ही तत्व से नाना प्रकार की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वेद ने कहा ऐसा ही होता है। सब खेल माया का है। माया (Gravity) के विभिन्न प्रभावों के द्वारा एक ही प्रकार के सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु नाना प्रकार की मौलिक सृष्टी करने में समर्थ हैं। इसको उदाहरण से भी देखें :– एक ही प्रकार की खाद और मिट्टी से नाना प्रकार के अन्न तथा जीवधारी निरन्तर जन्म धारण करते हैं तथा उनके शरीरों में नाना अंग तथा अवयव निर्मित होते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म सृष्टी में भी ऐसा ही होता है।

वेद में बहुत से सिद्धान्त सूत्र भी स्थापित किये गये हैं। इनकी विशेषता यह है कि यह प्रत्येक अवस्था में अनिवार्य रूप से लागू होते हैं। उदाहरण के लिये एक सूत्र लेते हैं :– 'यत् पिण्डे तत् ब्रम्हाण्डे।' यह एक बहुचर्चित ज्योतिर्वेद का सिद्धान्त सूत्र है।

'मैं सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का सूक्ष्म स्वरूप हूं। जो कुछ भी सचराचर में है, वह सबकुछ सूक्ष्म होकर मुझमें समाया हुआ है। जो मुझमें नहीं है, वह सचराचर में कहीं भी नहीं है। मुझमें सूक्ष्म होकर समाये हैं सम्पूर्ण सूर्य, ग्रह और नक्षत्र! मुझमें समाया हुआ है सूक्ष्म होकर सबको बनाने वाला परमेश्वर! चाहूं तो स्वयं से सचराचर को सम्पूर्णता से पहचान लूं, पढ़ लूं अथवा सम्पूर्ण सचराचर के द्वारा अपने से परिचित हो सकूं। वाह्य जगत का सूक्ष्म भी उसी के सदृश्य ही है। सूक्ष्म ब्रम्ह का विस्तार भी वैसा ही है।' यथा समय हम इसके नाना प्रयोग देखेंगे।

हम अभी कथा से पूर्व की भूमिका में हैं। कथा के धरातल तथा स्वभाव का सूक्ष्म एवं संक्षिप्त परिचय भर ही ले रहे हैं। जिससे जब कथा का

आरम्भ हो तो कथा को उद्देश्य सहित सहज ही आनन्दपूर्वक ग्रहण कर सकें।अभी ज्योतिर्वेद के एक अति महत्वपूर्ण अंग की चर्चा विशेष है:– ज्योतिष। जी हां! जीवन, उत्पत्ति एवं सृष्टी के गूढ़ रहस्यों को सूक्ष्मता से जानने की विलक्षण विधा! क्षीरसागर और माया के प्रभावों को विभिन्न स्तरों तथा परिस्थितियों में जांचने मापने की अद्‌भुत प्रणाली!

ज्योतिर्वेद के अनुसार जीवन की उत्पत्ति, स्थायित्व एवं निरन्तरता ग्रहों की मायाओं के प्रभाव पर निर्भर करती है। ग्रहों की कृपा के बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव है। सरल उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें :– कल्पना करें आपके सामने एक युवक बैठा हुआ है। उसका वजन ६० किलोग्राम है। यह वनज क्या सचमुच उसका है? इसी युवक को यदि चंद्रमा पर भेज दें तो इसका वजन केवल १० किलो भर रह जायेगा। धरती पर लौटने पर उसका वजन फिर से ६० किलो हो जायेगा। इसी युवक का वजन मायारहित क्षेत्र (Space) में शून्य हो जायेगा। ऐसा केवल माया के विभिन्न प्रभावों के कारण होगा। यदि पृथ्वी पर से सभी ग्रहों की माया का प्रभाव हटा लिया जाये, तब क्या होगा? उस दशा में सम्पूर्ण भूमण्डल बिना किसी परमाणविक विस्फोट के महाविनाश की गहन निद्रा में व्याप्त हो जायेगा। किसी भी प्रकार का जीवन धरती पर नहीं होगा। सब खेल माया का ही है। माया के संतुलित रहने पर ही मिट्टी सुन्दर मोहक वनस्पतियों में जीवन्त हो सकती है। किसी के घर में नवजात शिशु की किलकारियां गूंज सकती हैं। सब मायाओं की कृपा द्वारा ही संभव है।

ज्योतिष शास्त्र इन्हीं ग्रहों की मायाओं को विभिन्न स्तरों पर जांचने मापने की अदभुत वैज्ञानिक प्रणाली है। जीवन के गूढ़ रहस्यों का अनावरण करने वाली महा विद्या। ज्योतिष को वेद की आंखें कहकर सम्मनित किया गया है। 'वेदस्यचक्षुराहु!'

विश्व को समय के ज्ञान से समृद्ध करने वाला भी इकलौता ज्योतिष शस्त्र ही है। समय की व्याख्या, उत्पत्ति, व्यवस्था तथा समायोजन का एकाधिकार भी ज्योतिष शास्त्र का ही है। सम्पूर्ण विश्व का विज्ञान, गणना

आदि ज्योतिष की 'काल निरूपण प्रणाली' पर पूर्ण रूपेण आश्रित है। स्पेस शटल हो, कम्प्युटर हों, उपग्रहों को स्थापित करने की जरूरत हो, आधुनिक विज्ञान को ज्योतिष प्रदत्त काल निरूपण प्रणाली की शरण में जाना ही पड़ेगा। यह काल निरूपण प्रणाली क्या है?

ज्योतिर्वेद ने कहा :– काल मिथ्या। गति सत्यम।।

समय स्वयं में अपरिभाषित शब्द है। समय की अपनी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। समय गति से ही परिभाषित होता है। समय का ना तो कोई आदि है और ना ही कोई अन्त है। समय तो अनन्त है। फिर इसका मूल्याकंन तथा सीमांकन कैसे हो? समय को स्पष्ट किस प्रकार किया जाये? पुनः विभिन्न ग्रहों, लोकों आदि की समय की इकाईयों का अनुपात किस प्रकार बनेगा? समय की सीमाओं में सम्पूर्ण ब्रम्हाण्डों को बान्धना, उनकी दूरियों और परिक्रमाओं को सचराचर में सभी प्रकार से एक ही प्रणाली द्वारा सभी ग्रहों पर सदा स्पष्ट सन्देहरहित सुस्पष्ट परिभाषित करना, क्या सम्भव है?

ज्योतिर्वेद ने कहा,'यह सर्वथा सम्भव है।' एक ही समय पर किसी एक ग्रह पर बैठा व्यक्ति किसी भी ग्रह नक्षत्र पर घटते समय का सही मूल्यांकन करने के साथ उसकी दूरी, दिशा तथा अवस्था का भी सही सटीक मूल्यांकन कर सकेगा। इसी समस्या के समाधान के रूप में अन्तर्ब्रम्हाण्डीय काल निरूपण प्रणाली की कल्पना साकार हुई। जिसका दूसरा विकल्प विश्व आज तक नहीं खोज पाया है। अति संक्षेप में इसे स्पष्ट करते हैं, इसका विस्तार यथा समय करेंगे।

समय को गति के गणित द्वारा ही नापा जायेगा। समय गति में ही परिभाषित होगा। प्रत्येक ग्रह गतिशील है। प्रत्येक ग्रह परिक्रमाओं को प्राप्त है। ग्रह की एक परिक्रमा ही ग्रह के एक वर्ष का प्रमाण होगी। परिक्रमा में ३६० अंश होते हैं। यही तिथियों के रूप में जाने जायेंगे। ३० अंश की एक राशि तथा ३० तिथियों का एक माह होगा। १२ राशि का

पूर्ण चक्र ही १२ माह का पूर्ण वर्ष होगा। यही समय की व्याख्या होगी। इसी प्रणाली ने शून्य को भी प्रकट किया।

जितने समय में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करती है, उतने समय में चन्द्रमा पृथ्वी की लगभग १२ परिक्रमा कर लेता है। इसलिये पृथ्वी का एक वर्ष, चन्द्रमा के १२ वर्ष के बराबर होगा। जितने समय में पृथ्वी सूर्य की लगभग १२ परिक्रमा पूरी कर लेती है, बृहस्पति ग्रह सूर्य की एक परिक्रमा को पूरा करता है। इसलिये बृहस्पति ग्रह का एक वर्ष पृथ्वी के १२ वर्ष के बराबर है। इसलिये बृहस्पति ग्रह एक राशि में एक वर्ष रहता है। १२ वर्ष में १२ राशियों में एक परिक्रमा पूरी करता है। इसी प्रकार शनि ग्रह की एक परिक्रमा (एक वर्ष) पृथ्वी के ३० परिक्रमा (३० वर्ष) के बराबर है। शनि को प्रत्येक राशि में ढाई वर्ष रहना होगा।

इस काल निरूपण प्रणाली द्वारा आप सभी ग्रहों की दिशा, अवस्था तथा गति का सही ज्ञान सदा कर सकते हैं, इसके साथ ही आप यह भी जान सकते हैं कि भविष्य में कब कहां किस गति से यह ग्रह कहां स्थित होगा। यदि आप अन्तर्ब्रम्हाण्डीय युग में हैं तथा देवयानो द्वारा गमन कर रहे हैं, तब आपको इस प्रणाली की अत्याधिक आवश्यकता होगी। इसके बिना आप आकाश की अनन्त गंहराईयों में प्रवेश की कल्पना भी नहीं कर सकते। ज्यामिति (Geometry) भी इसी युग की देन है। गतिशील ग्रह से गतिशील ग्रह पर समय,गति और दिशाका अनुपात करके गन्तव्यों पर सटीक पहुंचना इसी के द्वारा सम्भव है। क्या हमारा लुप्तप्राय अतीत अन्तर्ब्रम्हाण्डीय युग रहा है? यदि नहीं तो इतनी सम्मुन्नत काल प्रणाली क्यों?

जयोतिर्वेद ने कहा :– जहां सारे ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं, वहीं सूर्य भी स्थिर नहीं है। सूर्य अपने परिवार सहित एक महाग्रह की परिक्रमा कर रहा है। इस महाग्रह का नाम देवलोक है। ज़ितने समय में सूर्य इस देवलोक की एक परिक्रमा पूरी करता है वह सूर्य का एक वर्ष कहलाती है। परिक्रमा ही वर्ष क़ा प्रमाण है। जितनी देर में सूर्य एक परिक्रमा पूरी

करता है, उतने समय में पृथ्वी सूर्य की लगभग ४३,२०,००० परिक्रमा पूरी कर लेती है। इसे ही चतुर्युगी कहते हैं। परिक्रमा की चारों दिशाओं (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) की संज्ञा है :– सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। इसकी चर्चा श्रीमद्भगवत्‌गीता तथा पुराणो में भी है। इन गणनाओं की क्या आवश्यकता थी? कौन थे वे लोग जो लाये इन्हें धरा पर? क्यों लाये? क्या उनके देवयान इतनी दूरियों को पार कर सकते थे? कहां गये वे लोग?

ज्योतिर्वेद ने कहा :– देवलोक भी अस्थिर है। ऐसे नाना देवलोक (Galaxy) निरन्तर ब्रम्हलोक की परिक्रमा करते हैं तथा ब्रम्हलोक भी गतिमान हैं :–'आब्रम्हभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनो अर्जुन।' गीता। इसका विस्तार आप किसी भी पंचागं में देख सकते हैं। पूजा, हवन अथवा यज्ञ से पूर्व लिये गये संकल्प में भी आप ज्योतिर्वेद की आख्यिकाओं को ही दुहराते हैं। यथा 'अष्टाविंशतमे युगे कलियुगे कलि प्रथम चरणे वैवस्वतमनवन्तरे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे........'आदि।

इस अति संक्षिप्त पूर्वाभास परिचय के साथ हम अतीत के विज्ञान की उलझी हुई जीवन पहेली को सुलझाने के लिये विषयप्रवेश करेंगे। तथ्य, प्रमाण तथा परिस्थितिजन्य साख्यों द्वारा उलझी डोरियों को सुलझाने का प्रयास करेंगे। अन्ध आस्था अथवा अन्धविश्वास के वशीभूत कदापि नहीं होंगे। परन्तु जल्दबाजी में किसी विश्वास का अनादर भी नहीं करेंगे। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि हम दो विज्ञान की धाराओं में हैं। एक अतीत के विस्मृत युगों की विज्ञान धारा तो दूसरी वर्तमान युग की सिद्ध वैज्ञानिक मान्यतायें। परन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि पूर्व में स्थापित विज्ञान को भी गलत सिद्ध होने पर बदलना पड़ा है। हम अनासक्त तथा निष्पक्ष भाव से अन्वेषण करेंगे।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• जीवन का उद्गम। क्यों और कैसे?

जीवन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस ज्वलन्त समस्या से विश्व अपने उद्गम काल से ही जूझता रहा है। हम भी इस विषय में प्रवेश करें आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों का संक्षिप्त परिचय लेते हुए हम अतीत के युगों के वैज्ञानिक अनुसंधानों से स्थापित मान्यताओं की चर्चा क्रमवार करेंगे।

चार्ल्स डारविन एक वैज्ञानिक का नाम हमारे सामने उभर कर आता है। एक महान व्यक्तित्व जिसने सम्पूर्ण जीवन इसी खोज में ही आहूत कर दिया। उनकी जीवन भर की तपस्या रंग लायी और खोज को असंख्य साख्यों, प्रमाणों तर्कों से उन्होने अपनी खोज को लक्ष्य तक लाने के अथक प्रयास भी किये तथा उन्हें विज्ञान जगत से भारी सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होने अपनी पूर्वानुमानित कल्पना कथा में बिग बैंग थ्योरी को आधार माना। कथा इस प्रकार है :–

सूरज एक आग का जलता हुआ गोला है। एक समय इस आग के जलते गोले में भयंकर विस्फोट हुआ। सूरज का एक जलता हुआ भाग धड़ाके के साथ सूरज से अलग हो गया। यह आग का गोला क्षीरसागर (Space) में भटकने लगा। समय के साथ यह ठंडा पड़ने लगा। गैस जमने लगी और इसकी ऊपरि सतह पर पपड़ी जमने लगी। जिसने ठंडे होने पर धरती का रूप धारण किया। जबकि धरती के भीतर गर्म लावा अभी भी दहक रहा है। इसे नाना साख्यों, प्रमाणों तथा तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

ठन्डी पड़ती धरती पर गड्ढों में भाप ठन्डी पड़कर जमने से जलाशय और सागर बनने लगे। सागर में एक कोशीय जीव एमीबा और बैक्टीरिया सर्व

प्रथम जीवन के रूप में प्रकट हुये। इन्हीसे धरती पर जीवन प्रकट हुआ। कैसे हुआ?

एक कोशीय जीव समय के साथ द्विकोशीय जीव के रूप में परिणित होने लगे। द्विकोशीय जीवन समय के गम्भीर अन्तरालों में बहुकोशीय जीवन के रूप में ढलने लगा जिससे लम्बे काल के उपरान्त मैमल अर्थात विशालकाय डायनासोर सृष्टी हुई। फिर डायनासोर सृष्टी लुप्त होने लगी। बन्दर हुए। बन्दर से आदमी का लम्बे समय उपरान्त जन्म हुआ। इस प्रकार आदमी जोकि बन्दर की औलाद है, धरती पर पैदा हुआ। इस कथा में बहुत से सन्देह हैं, जिनके उत्तर मिलना अभी बाकी है। उनमें कुछ इस प्रकार हैं :–

१– सूरज से क्या अलग हुआ था? सूरज की सतह पर जितनी गर्मी की कल्पना हम करते हैं, उसमें स्थूल, द्रव अथवा गैस का अस्तित्व में बने रहना नितान्त असम्भव लगता है। जो कुछ भी होगा, विक्षिप्त अणु अथवा परमाणुओं में विघटित हो जायेगा? पृथ्वी के रूप में संघठित कैसे होगा?
2– भाप कहां से आयी? सूरज पर भाप रह ही नहीं सकती। हाइड्रोजन और आक्सीजन का मालेकुलर विभाजन उतनी गर्मी में स्वतः हो जायेगा। उन्हें पुनः जोड़ेगा कौन? कैसे? काश! हम जान पाते तो पृथ्वीवासियों को घटते पानी के भय से भयमुक्त कर पाते।
३– एमीबा तथा बैक्टीरिया आज भी एक कोशीय जीव हैं। उनके द्विकोशीय होने के कारण और प्रमाण कहीं भी किसी काल में भी स्पष्ट रूप से नहीं मिले हैं। डारविन की इस अवधारणा का प्रमाण कहीं भी उपलब्ध नहीं है।
४– बिग बैंग से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, बाकी असंख्य ग्रहों की उत्पत्ति किस बैंग से हुई। यह कहीं पर भी स्पष्ट नहीं है। बैंग से उत्पत्ति की अवधारण प्रकृति के नियमों तथा स्वभाव के विपरीत है। क्या आपने कभी देखा कि सड़क पार करते समय एक व्यक्ति तेज गाड़ी से टकराकर तीन टुकड़ों में विभाजित हो गया। कुछ समय बाद तीनो टुकड़े तीन जीवित व्यक्ति बनकर घर चल दिये? आप चाहें तो विश्वास कर सकते हैं।

५– बिग बैंग की कहानी में धरती और चन्द्रमा एक ही समय, एक ही प्रकारसे तथा एक ही प्रकार के पदार्थ से बने हैं। जबकि वर्तमान विज्ञान ही इस अवधारणा को नहीं मानता। दोनो ग्रहों की मिट्टी तथा बनावट सर्वथा भिन्न है। पृथ्वी और मंगल ग्रह की धरती तथा बनावट में साम्य है।

६– बन्दर से आदमी बनने की कहानी को आधुनिक जीन थ्योरी नहीं मानती। पुनः, अब बन्दर आदमी क्यों नहीं बनते। यदि ऐसा हो जाये तो मानव समाज में व्याप्त जाति, कुल, गोत्र और साम्प्रदायिकता जैसी कुरीतियां स्वत समाप्त हो जायेंगी।

६– डारविन ने अन्य सम्भावनाओं पर कोई विचार ही नहीं किया। यदि जीवन इस धरती पर किसी काल में लाकर बसाया गया हो? इस अवधारण के साख्य और प्रमाण लगभग सभी धर्मो सम्प्रदायों में मिलते हैं। क्या डारविन अपनी पूर्वानुमानित कल्पना से इतना अधिक सम्मोहित हो गया था कि उसने अन्य सम्भावनाओं से कतई आंख मूंद ली?

इसी प्रकार के असंख्यों सन्देह हैं जिनका उत्तर हमें उसकी खोज में नहीं मिलता। विज्ञान जगत ने भी डारविन को सम्भावना के रूप में ही लिया, वह भी इस शर्त के साथ, यदि भविष्य में एक कोशीय जीव एमीबा अथवा बैक्टीरिया बहु कोशीय बना तो डारविन की थ्योरी पर विचार करेंगे। ऐसा कभी नहीं हुआ। पिछले २०० वर्षो में विश्व विज्ञान ने इन्हें एक कोशीय ही पाया है। आधार ही सन्देहास्पद होकर रह गया।

डारविन के अतिरिक्त और भी कुछ वैज्ञानिक सम्भावनायें समय के साथ प्रकट हुई, जैसे थ्योरी आफ एमीनो एसिड आदि। कुछ नई दिशायें भी उभर कर सामनें आयी, जिन पर कार्य चल रहा है। सबकुछ भविष्य में छिपा हुआ है। जीव विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। उनकी विशिष्ठ उपलब्धियां हैं। क्लोन बनाना, अंगों को बदलना, जीन की उपलब्धि, नये अवयवों का निर्माण आदि जीवन पहेली के रहस्यों को जानने के अथक प्रयास ही हैं। मानव ने हार नहीं मानी है। मानव कभी हारेगा नहीं।

विश्व के लगभग सभी अथवा अधिकांश धर्म एकाकी भाव से आकाश में ही इसके उत्तर खोजते रहे हैं। गाड (ळव्व), अल्लाह अथवा परमेश्वर की जब भी चर्चा होती है, व्यक्ति अनजाने ही हाथ आसमान की ओर उठा देता है। क्या उत्तर की दिशा उस ओर है? समाधान हमें वहां मिलेगा? क्या जीवन का उद्‌गम 'सेवेन हैवेन', 'सात आसमान', 'सप्त लोक' अथवा धरती से दूर कहीं खोजना होगा? गम्भीर अतीत में लुप्त हो गये ज्योतिर्वेद तथा मनु स्मृतियों के अवशेष क्या हमारी खोज में सहायता कर सकते हैं? हमारी खोज की एक दिशा यह भी तो हो सकती है?

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• जल और जीवन धरती पर उतारा गया था। ज्योतिर्वेद।।

ज्योतिर्वेद के अनुसार जल और जीवन इस धरा पर उतारा गया था। युगों तक इसके प्रयास होते रहे। अनुसंधान चलते रहे। असफलताओं तथा विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होने हार नहीं मानी। ६० हजार अभियान भस्म हो गये। भयंकर जाति विनाश हुए। वे फिर भी नहीं थके, ना ही हार मानी। अन्ततः वे सफल हुए। धरती पर उनकी पीढ़ियों को जीवन मिला, वे स्थापित हुए। कौन थे वे लोग? कैसे कर पाये जीवन का स्थानान्तरण!? कैसे सुलझीं क्षीरसागर और माया की गुत्थियां? कैसे असम्भवप्राय कार्य सम्भव हो सके? इसकी कथा क्या है? उसके तथ्य, प्रमाण और साख्य कहां हैं? ज्योतिर्वेद तथा अन्तर्ब्रम्हाण्डीय विज्ञान क्यों और कैसे लुप्त हो गया?

जीवन के बीज की उत्पत्ति माया (Gravity) में सम्भव नहीं है। इसे क्षीरसागर (Space) में उत्पन्न किया जा सकता है। ग्रहों पर माया के निरन्तर प्रभाव के कारण जीवन को क्षीरसागर में उत्पन्न करने के पश्चात ही माया में उतारा जाता है। इसीलिये शुक्राणु, अण्ड अथवा शिशु सभी को गर्भ में अथवा शरीर के मायारहित क्षेत्र में ही उत्पन्न किया जा सकता है। यदि गर्भ में माया का प्रवेश हो गया तो भ्रूण मारा जावेगा। शरीर की आत्मिक शक्ति मायाओं के प्रभाव को शरीर के बाहर ही निरन्तर निष्क्रिय करती रहती है, जिससे देह के भीतर क्षीरसागर अक्षुण रहे तथा मायाओं के द्वारा जीवन का विनाश न हो। क्या ज्योतिर्वेद के इस सिद्धान्त को सहज ही नकारा जा सकता है? चारों वेद इसी सिद्धान्त के पक्षधर हैं। मुर्गी के बच्चे को भी इसी प्रकार जन्मना होगा। पेढ़, पौधों को भी इसी सिद्धान्त के आधार पर अपनी वशंवृद्धि करनी होगी। जीवन की उत्पत्ति का यह ज्योतिर्वेद का सिद्धान्त सूत्र है।

ज्योतिर्वेद प्रदत्त ज्योतिष शास्त्र में नाना ग्रहों की मायाओं के प्रभावों से जीवन के भूत, भविष्य तथा वर्तमान का सटीक दर्शन करने की सिद्ध प्रणाली है। माया ही जीव की मृत्यु का कारण है। माया द्वारा ही जीवन का संचालन एवं नियन्त्रण होता है। ग्रहों की माया के प्रभाव को जांचने मापने तथा जीवन को व्यवस्थित करने की विद्या का नाम ज्योतिष शास्त्र है। इतना ही नहीं ज्योतिष ही जीवन पहेली के रहस्यों को दिशा प्रदान करने में पूर्ण समर्थ है। इसकी संक्षिप्त चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं।

ज्योतिर्वेद के अनुसार सृष्टी का सूक्ष्म बिन्दु (Atom) जीवित सूक्ष्म ब्रम्ह कहलाता है। यह सूक्ष्म ब्रम्ह अमर है तथ एक ही प्रकार के हैं। 'एको ब्रम्ह द्वितीयोनास्ति।' बिन्दु एक ही है। परिस्थितिओं के अनुरूप यह सूक्ष्म ब्रम्ह असंख्यों रूप धारण करने में समर्थ है। माया के प्रभाव में आते ही यह मायावी हो उठते हैं। इन्हीं सूक्ष्म ब्रम्हों से सम्पूर्ण जड़, चेतन सचराचर की सृष्टी होती है। यह बिन्दु अमर हैं। इनसे बने पदार्थो की ही प्रलय एवं उत्पत्ति होती है। इसकी चर्चा श्रीमद्भगवत्गीता में भी आयी हैं १३वें अध्याय में प्रकृति तथा आत्मा (उत्पत्ति, धारण, पालन एवं संहार की व्यापक सत्ता को प्राप्त अमरशक्ति) अमर हैं, ऐसा कहा गया है। इसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि ब्रम्ह की आयु अनन्त होते हुए भी सीमित है। इसे ज्योतिर्वेद में भी माना गया है। ब्रम्ह (Atom) की आयु सीमा की चर्चा वेदादिक ग्रन्थों में भी व्यापक रूप से हुई है। इसकी चर्चा लगभग सभी पंचान्गों में भी मिलती है। यथा ब्रम्हा की आयु के पचास वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इक्यावनवें वर्ष के प्रथम दिन का उदय होकर 'यथा इतने घड़ी.......... इतने पल........... इतने विपल.......... व्यतीत हो चुके हैं।' इस प्रकार की गणना इन पत्रों में आदि काल से निरन्तर क्रमबद्ध हो रही है। गणना प्रति प्रति विपल तक जाती है। ब्रम्हा की आयु १०० वर्ष है। अर्थात सूक्ष्म ब्रम्ह इतने सम[illegible] उपरान्त सृष्टी करने में अपने सहयोग की क्षमता खो देगा। इ[illegible]र्णन हमें अथर्ववेद से लेकर लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है

यहां एक बात गौर करने वाली है। एक ओर ब्रम्ह को अमर कहा गया है तो दूसरी ओर उसकी आयु की सीमा दर्शायी गयी है। ऐसा क्यों? सम्भवत कहने का तात्पर्य यही है कि प्रलय एवं उत्पत्ति की प्रक्रिया में ब्रम्ह अमर है अर्थात अप्रभावित है। प्रलय द्वारा रूप ही सूक्ष्म बिन्दुओं में विसर्जित होते हैं तथा सृजन द्वारा पुनः स्वरूप को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार प्रलय और उत्पत्ति स्वरूप की ही होती है, नाकि तत्व (सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दु जिनसे स्वरूप बना है।) का विनाश होता है। परन्तु तत्व की भी आयु सीमा निर्धारित है। जो सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दु में सर्वशक्तिमान सत्ता बनकर व्याप्त है, उसे परंब्रम्ह संज्ञा प्रदान की गयी है। यह सत्ता ही अजर अमर अविनाशी, घटघटवासी कही गयी है। सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दुओं के विनाश अर्थात निष्क्रिय हो जाने पर यही सत्ता उन्हें पुनः प्रकट करने तथा क्रियाशील करने तथा नये स्वरूपों को जन्मने, नयी सृष्टी करने में समर्थ है। चूंकि, क्रियात्मकशक्ति (परंब्रम्ह, आत्मा) सूक्ष्मब्रम्ह में व्याप्त है, इसलिये ही उसे सर्वव्यापी होने का सम्मान प्राप्त है।

सूक्ष्मब्रम्ह बिन्दुओं के स्वरूप कैसे हैं? एक वृताकार क्षीरसागर (Space, gravityfree Zone) है। इसमें दो ध्रुव (Pole) हैं। शिव और शक्ति, विष्णु और लक्ष्मी, ब्रम्हा और सरस्वती। प्रलय, पालन, उत्पत्ति। इन बिन्दुओं में व्याप्त परंब्रम्ह शक्ति इन्हें यथा रूप प्रदान करती नूतन सृष्टी करती है। नाना ग्रन्थों में इनकी नाना प्रकार की व्याख्यायें तथा नाना रूपों की चर्चा मिलती है। विश्व भर में फैले नाना धर्मों, साम्प्रदायिक ग्रन्थों में भी इसकी चर्चा मिलती है।

ज्योतिर्वेद के अनुसार इन्हीं सूक्ष्म बिन्दुओं से ही सम्पूर्ण सचराचर का निर्माण होता है। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर सब इन्हीं से बनता है। ग्रह, सूर्य, नक्षत्र, लोक इन्हीं से निर्मित होते हैं। इन्हीं जीवन्त सूक्ष्म कणों से जड़, चेतन प्रकट होते हैं। चिता की राख, खेत की सड़ी हुई मिट्टी पुनः सुन्दर, सुगंधित एवं सरस वनस्पतियों के रूप में जन्मती हैं। यज्ञों (य अर्थात उत्पत्ति तथा ज्ञ का अर्थ है ज्ञात अर्थात प्रकट, उत्पन्न अथवा स्पष्ट होना) द्वारा यही वनस्पतियां नाना जीवधारियों की यथा संतति के

रूप में निरन्तर जीवन्त हो रही हैं। इसी को आवागमन की संज्ञा प्रदान की गयी है।

सृष्टी के यह सूक्ष्म ब्रम्ह बिन्दु यदि जीवित न होते तो इनसे जीवन्त सृष्टी की कल्पना हो ही नही सकती तथा प्रलय एवं उत्पत्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया में ये अमर अर्थात अप्रभावित नही होते तो भस्मी के कण पुनः शिशु के रूप में जीवन्त होकर किलकारियां कैसे भरते? वेद के मत से यह अमर हैं तथा इन्हीं से सचराचर निरन्तर यज्ञों द्वारा बनता रहता है। इनको बनानेवाली सत्ता इन्हीं में व्याप्त है। यदि वह किसी अन्यत्र लोक में होती तो वर्तमान सृष्टी सम्भव ही नहीं थी। उस दशा में सबकुछ उसी लोक में उत्पन्न होता नाकि माता के गर्भ से शिशु जन्म लेता। सब आसमान से लेबल लगवाकर धरती पर गिर रहे होते। भोजन भी वहीं से टपकाया जा रहा होता। जरा उस दृष्य की कल्पना तो करें।
सृष्टी है जहां ! सृष्टा है वहां ! सूक्ष्म कण.कण में सृष्टी है, सर्वव्यापी सृष्टा है। ज्योतिर्वेद किसी भी प्रकार की अन्धभक्ति, अन्धश्रद्धा अथवा अन्ध आस्था पर विश्वास नहीं करता। प्रकृति के अटल नियमों को ही अपनी खोज का स्वरूप देता है। उसने प्रकृति को ही धर्म तथा धर्मग्रन्थ के मूल पाठ के रूप में ग्रहण किया है। इसकी चर्चा सभी वेदादिक ग्रन्थों में है।

ज्योतिर्वेद ने जीवन को मात्र शरीर भर ही नहीं माना है। उसके अनुसार जीवन एक निरन्तर धारा है। शरीर के न रहने पर भी जीवन का अन्त नहीं होता है। आत्मा अमर है। जीव भी मरता नहीं है। शरीर के न रहने पर उसके जीवन की धारा आवागमन की राह चल देती है। शरीर भी पुनः प्रकृति की धाराओं में बहता नये जीवन्त रूपों में लौट आता है। मृत्यु तो एक परिवर्तन भर है। इसकी विस्तृत चर्चा श्रीमद्‌भवत्‌गीता में है।

इस संक्षिप्त परिचय के साथ अब हम पृथ्वी पर जीवन के अवतरण की कथा का आरम्भ कर सकते हैं। विस्तार, साख्य, प्रमाण विस्तृत चर्चा हम यथा समय करेंगे। धरती पर जीवन अपने आप, दुर्घटनावश उत्पन्न नहीं होता। जल भी अपने आप पैदा नहीं हो जाता। यह सब यज्ञ के द्वारा ही

सम्भव होता है। 'हे अर्जुन ! अन्न से भूत प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति होती है। जल से अन्न की उत्पत्ति होती है। जल यज्ञ से उत्पन्न होता है।' गीता। विश्व का विज्ञान अभी तक इस गुत्थी को सुलझा नहीं पाया है। वह यज्ञ कौन सा है जिससे जल की उत्पत्ति होती है? जल के बिना वर्तमान जीवन का स्थायित्व सम्भव नही है। जल पृथ्वी पर निरन्तर घट रहा है। समाधान किसी के पास नहीं है। चलें कल की कथा में:—

आकाश में असंख्य आकाश गंगायें हैं। अनगिनत नक्षत्रमंडल हैं। प्रत्येक नक्षत्र मंडल में लोक और नाना सूर्य परिवार हैं। इनमें नाना प्रकार के जीवन की सम्भावनायें हैं। शरीरी, अशरीरी, जल–जीवन पर आश्रित जीवन अथवा अन्य पदार्थो पर आश्रित जीवन की प्रबल सम्भावनायें हैं। हमारी कथा का आरम्भ हमारे ही जैसे लोक (Galaxy) से होता है। हमारे देवलोक (Galaxy) के समीप ही एक दूसरा देवलोक है। जिस प्रकार हमारे देवलोक की १३ सूर्य परिवार (त्रयोदश रूद्र) परिक्रमा करते हैं तथा पृथ्वी आदि नाना ग्रह प्रत्येक सूर्य की परिक्रमा यथा कक्षा में करते हैं। उसी प्रकार असंख्यों ऐसे देवलोक परिवार हैं जहां यही क्रम निरन्तर है। चूंकि यह आकाश गंगायें भी निरन्तर ब्रम्हाण्ड की परिक्रमा करती रहती हैं इसलिये इनकी दूरी का समीकरण भी बदलता रहता है। कभी यह एक दूसरे के पास हो जाती हैं तो कभी बहुत दूर। मायाओं के भिन्न प्रभाव समीकरण ही इनके पथ का निर्धारण नित करते हैं। इनमें कुछ आकाश गंगाओं में जीवन समुन्नत, ज्ञान विज्ञान में सिद्ध अवस्थाओं को प्राप्त तथा अन्तब्रर्म्हाण्डीय आवागमन की दक्षता को प्राप्त कर चुके थे। देवयानो के द्वारा वे आकाश में स्वछन्द विचरण करते थे। इन देवयानो की चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में व्यापक रूप में मिलती है। ज्योतिर्वेद में भी इनकी भरपूर चर्चा हुई है। उसके अनुसार ये यान मायाओं का नियन्त्रण कर प्रकाश की गति को प्राप्त थे। १,८०,००० मील प्रति सेकेन्ड अथवा इससे भी अधिक।

धरती के मानव ने अभी चिड़ियों की तरह ही उड़ना सीखा है। यह ग्रह भी तो आकाश में उड़ रहा है। कैसे? कौन से और कितने इन्जन तथा कौन सा ईधन लगा है इसे उड़ाने में? फिर यह आकाश में अनन्तकाल से

कैसे उड़ रहा है? यदि हम इसके रहस्यों को जानकर उसे अपने नियन्त्रण में ले आवें तो हमारे यान भी प्रकाश की गति से उड़ सकते हैं। इन यानो की चर्चा तथा इनके निर्माण एवं कार्यप्रणाली की चर्चा भी वेदादिक ग्रन्थों में उदाहरणार्थ परोक्ष रूप में आयी है। ये यान माया (Gravity) को निरस्त्र कर प्रकाश की तेज गति से आकाश में मायारहित क्षेत्र में प्रवेश कर जाते थे। जिस गन्तव्य की ओर उन्हें जाना होता था, वे उसी ओर माया का प्रभाव क्षेत्र अत्याधिक विस्तृत करते सहज ही गन्तव्य पर पंहुच जाते थे। वे लोग देवयानो पर विचरण के कारण देवता कहलाते थे। जब आप किसी स्थान से प्रकाश की गति से हटेंगे तो देखने वालों को यही लगेगा कि आप अदृश्य हो गये। सब खेल माया का है। जिसने माया का नियन्त्रण पा लिया वही होगा विष्णु सा सर्वशक्तिमान !

मानव की खोज का अन्त नहीं है। उसकी जिज्ञासा कभी शान्त नहीं होती। कुछ समय के लिये तृप्त रहने के उपरान्त पुनः कुछ नया जानने के लिये व्याकुल हो उठती है। इसी उत्कंठा ने धरा पर जीवन को उतारा था। वे लोग जानना चाहते थे कि इस आकाशगंगा में जीवन की क्या गति होगी तथा नाना प्रकार के प्रभावों के उपरान्त जीवन का स्वरूप क्या होगा। एक नई जिज्ञासा, नई खोज, कुछ अनुसंधान नये, दूसरी आकाशगंगाओं में कुछ नया कर दिखाने की चाहत, इसी से आरम्भ हुआ महाराज सगर का अश्वमेध यज्ञ ! अश्व का अर्थ होता है, 'अ' माने रहित तथा 'श्व' माने मृत ! अश्व अर्थात मृत्यु से रहित होना। मेध अर्थात प्रवेश करना। मृत्यु को पराजित कर जीवन की पुनर्स्थापना। आकाशगंगा को जीवन्त करना। महाराज सगर के अभियान की कथा बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में आयी है। महाभारत महाकाव्य में इसका विशेष रूप से वर्णन हुआ है। महाभारत महाकाव्य महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित है। वेदव्यास (कृष्णद्वैपायन) ने ही वेदत्रयी (तीन वेदः– ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) का रांकलन किया है। चौथा वेद अथर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है। इसके संकलनकर्त्ता अथर्वन ऋषि माने गये हैं। उपरोक्त दोनो ऋषि वेदों के

संकलनकर्त्ता भर हैं। वेदों के रचयिता ऋषियों के नामों की चर्चा उनके सूक्तों में है। इनका काल इन दोनो से काफी पहले है।

महाराज सगर ने हमारी आकाश गंगा की खोज की। देवयानो द्वारा इन्द्रलोक (हमारी Galaxy आकाश गंगा) की व्यापक शोध तथा मायाओं के विभिन्न प्रभावों पर व्यापक अनुसंधान किये गये। जीवन तथा उसके स्थायित्व के लिये ग्रहों की मायाओं तथा उनकी स्थिति में परिवर्तन किये गये। इनकी कक्षा में उचित हेरफेर किये गये। इनकी परिक्रमा के पथ आवश्यकता के अनुरूप निरधारित किये गये। इसके बिना जीवन का अवतरण तथा स्थायित्व संभव ही नहीं है। आधुनिक विज्ञान को भी अन्य ग्रहों पर अथवा क्षीरसागर (Space) में जीवन को स्थापित करने के लिये इनके समाधान करने होंगे। माया पर नियन्त्रण किये बिना ये सब सम्भव नहीं है।

क्या महाराज सगर के युग का विज्ञान भारी भरकम ग्रहों की कक्षा इच्छानुरूप बदलने में समर्थ था? क्या ऐसा संभव है ? जीहां ! यह सम्भव है। इसकी चर्चा लीलाग्रन्थों में भी नाना प्रकार से हुई है। ग्रह का कोई भार नहीं है। भार तो माया (Gravity) का है। यदि मायाओं पर नियन्त्रण पा लें तो ग्रह को एक गेन्द की भान्ति उठाकर कहीं भी ले जा सकते हैं। ऐसे ही जैसे हनुमान पहाड़ उठा लाये थे अथवा श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत धारण किया था। काश ! धरती का विज्ञान और वैज्ञानिक बमों के बदले इस दिशा को अपने अनुसंधान की राह बनाये होते। धरती का मानव आकाश में तथा नाना ग्रहों पर जीवन की स्थापना कर रहा होता ? हमें नहीं भूलना चाहिये यह सम्पूर्ण जीवन धारायें हमारे पास अतीत के युगों की धरोहर हैं। हमने इन्हें नहीं बनाया है। इन्हें बरबाद करने का अधिकार हमें नहीं है। फिर इन बमों का हम क्या करेंगे ? यह केक और पेस्ट्री की तरह खाये भी नहीं ज़ा सकते। आप क्या करेंगे इनका? जीवन हम पर अतीत का कर्ज है। हमें इसको सूद सहित चुकाना होगा अन्यथा समय हमें कभी माफ नही करेगा। इस पूरे सौर मंडल में जीवन मात्र पृथ्वी तक सीमित होकर रह गया है। साख्य और प्रमाण हैं

कि पूरा मंड़ल कभी जीवन से भरपूर था।

नई आकाशगंगा, नये प्रकार की अनजानी चुनौतियां, विज्ञान निरन्तर अपने अभियान में जुटा रहा। समस्याओं के समाधान हुए। लगा ! सबकुछ ठीक है। जीवन को स्थानान्तरित किया जा सकता है। आज्ञा मिलते ही जीवन की धारायें चल दीं। विधि को कुछ और ही करना था। सबकुछ वैसा नहीं था। महाराज सगर की खुशियों का अन्त हो गया। कहीं कोई चूक रह गयी थी। अभियान मार्ग में ही नष्ट हो गये। ६०,००० जीवन असमय काल के मुख में समा गये। यह सब कैसे हुआ ? अब स्पष्ट कर पाना सम्भव नहीं है। महाराज सगर के पुत्रों के भस्म होने की कहानी की चर्चा भर मिलती है। जो थोड़ा आभास मिलता है वह इतना ही है कि मार्ग में पशुपताग्नियों (Cosmic Fires) के बवंडर में फंस जाने के कारण वे सब मृत्यु की गोद में समा गये। पशुपताग्नि को कपिल ज्वाला भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध महाशिव की प्रलय से है।

महाराज सगर ने इस दुर्घटना के लिये स्वयं को दोषी माना। उन्होंने स्वयं को कभी क्षमा भी नहीं किया। अपने पद का भी परित्याग कर, वे सदा के लिये एकान्तवासी हो गये। इसी में उनकी मृत्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारियों ने हार तो नहीं मानी परन्तु महाराज सगर जितना साहस भी नहीं जुटा पाये। अनुसंधान निरन्तर चलते रहे। दुर्घटना के कारणों तथा उसकी पुनरावृति को रोकने के अनुसंधान निरन्तर होते रहे। समय अपनी गति से बढ़ता रहा।

देवयानों के द्वारा सौरमंन्डल में अनुसंधान निरन्तर होते रहे। दो बार जल के विशाल भन्डार मंगल ग्रह की धरती पर उतारे गये। गंगायें उतरी परन्तु कुछ ही समय के उपरान्त जल क्षीरसागर में जाकर विलीन हो गया। मंगल ग्रह पर जीवन अवतरण की संभावनायें क्षीण हो गयीं। अन्य ग्रहों पर भी शोध चलता रहा। महाराज भागीरथ के अथक प्रयास के कारण ही पृथ्वी पर आकाश गंगा का अवतरण सम्भव हो सका। महाराज भागीरथ के द्वारा जीवन का पृथ्वी पर अवतरण सम्भव हुआ। इन्हीं के

उत्तराधिकारियों के रूप में महाराज दशरथ तथा उनके पुत्र श्री रामचन्द्र का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। पृथ्वी पर जीवन की इस सम्भावना कथा में भी बहुत से सन्देह अथवा प्रश्न ऐसे हैं जिनके समुचित उत्तर मिले बिना कोई निर्णय लेना उचित नहीं होगा।

जीवन को चरणबद्ध उतारा गया था। सगर के अभियान की विफलता के उपरान्त सबसे पहले विशालकाय जीवों को परीक्षण के रूप में धरती पर उतारा गया। जबतक वे मायारहित क्षेत्र में रहे, वे पूर्ण स्वस्थ रहे। परन्तु माया में आते ही उनके शरीरांग शिथिल होने लगे। वे स्वाभाविक जीवन नहीं जी पाये जल्द ही वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गये। इसी प्रकार विशालकाय जन्तुओं को कई प्रकार से क्रमबद्ध उतारा गया। इन अनुसंधानों से स्पष्ट हो गया कि कोई भी शरीर मायारहित क्षेत्र में आते ही मायाओं से लड़ने की सहज स्वभाविकता को खो देता है। उस दशा में माया में पुन प्रवेश करने पर उसके शरीर की लड़ने की क्षमता न लौटने के कारण, उसकी मृत्यु हो जाती है। ऐसी दशा में जीवन की कोमल तथा संवेदनशील धाराओं को क्षीरसागर के अत्याधिक लम्बे अन्तरालों से किस प्रकार पार किया जा सकेगा ? एक विकट समस्या थी उनके सामने। अनुसंधान चलते रहे। नाना समाधान खोजे गये। बीजों द्वारा उत्पत्ति की प्रणाली विकसित की गई। इसकी व्यापक चर्चा महाभारत में है। तुम्बियों में मानव बीज लाने तक की चर्चा है। गाय के गर्भ में मानव बीजों के संचार से उत्पत्ति की चर्चा भी इन्हीं ग्रन्थों में है। सम्भवत इसी कारण गाय को सर्वोपरि स्थान उनकी संततियों ने दिया है। वे आज भी गाय का सम्मान माता अथवा उनसे भी अधिक मानते हैं। गाय में ३३ करोड़ देवता वास करते हैं, यह विश्वास उनका आज भी है। क्या सचमुच गााय ने ही मानव को धरती पर प्रकट किया था ? सदेह क्षीरसागर न पार कर सकने की विवशता का क्या यही समाधान किया गया था ?

सदेह क्षीरसागर पार करने की अवस्था में मानव शरीर उत्पत्ति की योग्यता को खो देता है। अर्थात नपुंसक हो जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में

पुत्र प्राप्ति के लिये लगभग सभी कथानायकों को तप यज्ञादिक और वरदानों का सहारा लेना पड़ा। कहीं इन सारी कथाओं में.....?

यज्ञ के द्वारा उत्पत्ति की चर्चा लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों में बारम्बार आयी है। इससे भी स्पष्ट होता है कि धरती पर जीवन की धाराओं स्थापित तथा निरन्तर करने के लिये सभी प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान व्यापक रूप से किये गये थे। भविष्य में यदि आधुनिक विज्ञान को अन्य ग्रहों पर जीवन स्थापित करने की अवस्था में इसी प्रकार की समस्याओं से दोचार होना पड़ सकता है।

ज्योतिर्वेद के अनुसार सर्वप्रथम सृष्टी क्षीरसागर में ही हुई। जीवन के प्रथम संचार का स्थान मायारहित क्षेत्र अर्थात क्षीरसागर ही है। यह सृष्टी मैथुनी सृष्टी से सर्वथा भिन्न थी। फिर यह सृष्टी क्या थी ? इसे समझने के लिये हमें कुछ उदाहरणों से गुजरना पड़ेगा। अन्यथा यह नितान्त असंभव सी लगने वाली पहेली स्पष्ट नहीं हो पावेगी।

क्ल्पना करें की आप सागर के गोताखोर हैं। आप सागर की गहराईयों में कुछ पाने तथा कुछ जानने के लिये सागर की तलहटी पर गोता मारकर जाते हैं। पानी में आप की स्थिति सहज स्वाभाविक नहीं है। आप सांस नहीं ले सकते तथा सांस लिये बिना आप जीवित नहीं रह सकते। तब आप आक्सीजन का मास्क तथा सिलेन्डर साथ में ले जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जीव को माया में जीवित रहने के लिये शरीर रूपी मास्क तथा सिलेन्डर की जरूरत होती है। शरीर जीव का आश्रयस्थल है, नाकि जीवन का मूल। ग्रह की माया में जीव जोकि जीवन है, इसके बिना उसी प्रकार नहीं रह सकता जैसे पानी में मनुष्य आक्सीजन मास्क के बिना जीवित नहीं रह पाता।

परन्तु जल के जीव पानी में बिना मास्क के सुखपूर्वक रह सकते हैं। वे मास्क के तो मोहताज नहीं हैं, परन्तु उन्हें भी शरीर रूपी मास्क की भरपूर जरूरत है।

कल्पना करें एक व्यक्ति सागर में उतर गया है। वहां जाकर उसे वहां जाने का उद्देश्य याद नहीं रहा है। हम सब लोगों की भांति ही, उसे भी वहां होने के कारण का ज्ञान नहीं रहा है। वह भी हमारी तरह ही सोचने लगा है :–' अरे भई! यहां तो जमीन भी मुफ्त है। लाओ इसपर कब्जा करके एक मकान ही बना लें।' क्या आप इसे समझदारी कहेंगे ? आप हंसेगे। क्या बेवकूफ आदमी है ? यहां रह कैसे पायेगा। आक्सीजन खत्म होते ही इसका रामनाम सत हो जायेगा। भला यह भी कोई समझदारी है ? श्रीमान ! आप भी तो यही कर रहे हैं ! शरीर रूपी आक्सीजन चैम्बर भी तो सीमित है। यह भी कोई समझदारी है क्या ?

जिस प्रकार गोताखोर सागर से बाहर आते ही आक्सीजन चैम्बर से स्वयं को अलग कर लेता है। उसे अब इसकी जरूरत नहीं है। उसी प्रकार माया के क्षेत्र से बाहर निकलते ही जीवन, शरीर पर आश्रित नहीं रहता है। क्षीरसागर में उसे इसकी जरूरत नहीं है। परन्तु, यदि उसे पुनः माया में प्रवेश करना पड़े तो शरीर की उसे तत्क्षण आवश्कता पड़ेगी। शरीर के बिना वह अधिक देर तक नहीं रह सकता। इसका विषद् एवं व्यापक वर्णन अथर्ववेद में है।

मेरी कथा है सूरज के जैसी। सूरज की किरणे हर ओर फैलती हैं। उन्हें एक स्थान पर एकत्र कर पाना आसान नहीं होता। यही स्थिति मेरी कथा की भी है। मुझे इस कथा को हर ओर से उठाना पड़ेगा। पहले संक्षेप परिचय, फिर विस्तार। पुनः साख्य और प्रमाणों के लिये आदि प्राचीन ग्रन्थों की व्यापक चर्चा। उसके उपरान्त निर्णय तो आप सबको ही करना है। जीवन की अबूझ पहेली इतनी आसान भी तो नहीं है।

वेद की कहानी में जीवन की परिभाषा ही बदल जाती है। हम तो शरीर को ही जीवन माने बैठे थे। वेद ने तो समीकरण ही उलट कर रख दिये। शरीर जीवन का रक्षक, प्रकृति प्रदत्त घर है। शरीर से जीवन अभिव्यक्त तथा प्रतिबिम्बित होता है। परन्तु जीवन की कल्पना जीव से है जो इस शरीर रूपी घर में रहता है। इस जीव की उत्पत्ति क्षीरसागर में ही सम्भव

है। क्या आकाश में ही क्षीर सागर है ?

वेद ने कहा ऐसा नहीं है। प्रत्येक सूक्ष्म ब्रम्ह में क्षीरसागर सूक्ष्म होकर समाया हुआ है। दोनो ध्रुव सूक्ष्म ब्रम्ह के सदा क्षीरसागर में ही विद्यमान रहते हैं। 'यत्पिण्डे तत्ब्रम्हाण्डे! प्रत्येक जीवधारी के शरीर में क्षीरसागर सदा विद्यमान रहता है। जीव, शरीर में रहता हुआ भी इसी क्षीरसागर में ही रहता है। माया इस क्षीरसागर को नष्ट करर्ना चाहती है। शरीर निरन्तर मायाओं से संघर्ष करता क्षीरसागर की रक्षा करता रहता है। इस सम्पूर्ण जीवनयुद्ध को महाभारत युद्ध कहा गया है। ऐतिहासिक युद्ध तो उदाहरणार्थ है। वेद में आत्मा को सबका भरण—पोषण करने वाला होने से 'भरत' कहा गया है। आत्मा ही जीव का जनक है। इसी कारण वेद में जीव की संज्ञा 'भारत' है। 'भरतस्य अपत्यम् : भारतम्।।' जब भी माया शरीर के क्षीरसागर को नष्ट कर देह में प्रवेश कर जाती है, जीव को देह का परित्याग करना पड़ता है। इसीको मृत्यु कहते हैं।

जीवन और मृत्यु की वेद की परिभाषा का हमारा प्रथम संक्षिप्त परिचय है। इसका विस्तृत परिचय पाने के लिये हमें पहले गंगावतरण की कथा में जाना होगा। जल बिना जीवन धरती पर सम्भव नहीं है। वैसे हमारे एक तार्किक मित्र का कहना है कि सम्भव है। वह जल के बिना बीयर और व्हिस्की से काम चला लेते हैं। आप जरा अपनी इस सोच से सावधान रहियेगा। कथा की आत्मा का अमृतपान करें। महाराज भागीरथ की जलावतरण की कथा के मूल रहस्य !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• गंगावतरण !

गंगा क्षीरसागर से धरा पर अवतरित हुई, यह कथा आपने बहुत बार पढ़ी, सुनी तथा टेलीविजन के कार्यक्रमों में देखी होगी। गंगा क्षीरसागर में शेषशायी भगवान विष्णु के साथ रहती थी। महाराज भागीरथ के तप से उन्होंने धरती पर आना स्वीकार किया। परन्तु समस्या यह थी कि पृथ्वी, गंगा के उतरते समय के वेग प्रहार को किस प्रकार सह पायेगी। तब भगवान भोलेनाथ, जो प्रलय के देवता हैं; शिवशंकर ने अपनी विशाल जटाओं में समेटकर गंगा को धरती पर उतारा। यह कथा विस्तार से पुराणों में आयी है। इसी कथा को अब हम ज्योतिर्वेद में देखें।

धरती पर माया का प्रभाव होने के कारण, जीव जिसे जीवन कहा है, उसका लम्बे समय तक रूक पाना सम्भव नहीं है। उसे एक ऐसे यन्त्र की जरूरत है, जिससे वह माया में भी क्षीरसागर की अवस्था बनाकर रह सके। अर्थात अपने स्थायित्व के लिये अपने चारों ओर क्षीरसागर को बनाये रखे। क्षीरसागर में ही जीव अपनी स्वाभाविक अवस्था में रह सकता है। माया में न तो जन्म धारण कर सकता है, ना ही जीवित रह पाता है। जीवन को धरा पर उतारने के लिये तथा उसे निरन्तर गतिमान करने के लिये नाना यन्त्रों (शरीरों) की कल्पनाओं को साकार किया गया। ब्रम्हा द्वारा मैथुनी सृष्टी की कथा भी यही है। श्रुत तथा स्मृत होकर समय के अन्तरालों को पार करने के कारण कथाओं में कुछ बदलाव आना स्वाभाविक ही था। हमें इन यन्त्रों को इस उद्देश्य के साथ बनाना था कि यह मायाओं से निरन्तर युद्ध करता हुआ अपने भीतर के क्षीरसागर को नष्ट न होने दे। इसके साथ ही यह यन्त्र अपने ईन्धन और पुनर्निर्माण में भी समर्थ हो। माया से युद्ध करने की अवस्था में अपनी क्षति पूर्ति भी कर सके। इन सब के साथ ही अपनी संतति के रूप में नये यन्त्रों का निर्माण भी कर सके। इसी कल्पना को पृथ्वी पर साकार करने के प्रयास आरम्भ हो गये। इसी योजना को साकार रूप देने के लिये जल की उत्पत्ति तथा उसे धरा पर उतारना आवश्यक था। यज्ञ के द्वारा क्षीरसागर में जल के

विशाल भन्डारों की सृष्टी की गई। माया में जल की उत्पत्ति सम्भव नहीं थी। जल के इस अथाह भन्डार का नाम वैतरणी रखा गया।

जल के इस अथाह भन्डार को धरा पर उतारना आसान नहीं था। जल इस धरती से लगभग बीस गुना था। दो बार मंगल ग्रह पर जल उतारने की भूल हम पहले कर ही चुके थे। धरा पर सीधे जल उतारने से इसकी कक्षा तथा स्वरूप दोनो ही विकृत हो सकते थे। माया से नियन्त्रित कर हम दूसरे सौरमंडल से एक उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में लेकर आये। कालान्तर में यह उपग्रह चन्द्रमा कहलाया। पृथ्वी और चन्द्रमा के माया क्षेत्र से वैतरणी को धीरे धीरे धरा पर उतारा गया।

विष्णु हैं रक्षक, पालनहार, तथा इनके नाभिकमल में वास करते हैं श्री ब्रम्हा। क्षीरसागर में सदा शेषनाग पर विश्राम करते है। गंगाजी भी महालक्ष्मी के साथ वहीं रहती हैं। धारण तथा सृजन क्षीरसागर में ही सम्भव है। माया में प्रलय, विसर्जन ही हो सकता है। इसलिये शिव पृथ्वी के सबसे महान शिखर हिमालय के कैलाश पर्वत पर वास करते हैं। क्षीरसागर ही उत्पत्ति सृष्टी का मूल है, इसीलिये ब्रम्हा तथा विष्णु का मूल स्थान है। प्रलय, संहार माया में ही सम्भव है, इसीलिये महाशिव का मूल स्थान माया में ही होगा। उनकी जटायें ही माया को बिम्बित करेंगी। चन्द्रमा भी पृथ्वी की माया की परिधि के समीप है तथा शिव की जटायें ही माया का प्रतीक हैं, इसलिये चन्द्रमा शिव की जटाओं में, उनके भाल पर निवास करेगा। क्या आपको लगता नहीं कि गुरूकुल में छोटे बच्चों को विज्ञान पढाने के लिये इन्हें प्रतीकों के रूप में प्रयोग में लाते थे। कालान्तर में विज्ञान पूजा की थाली भर बनकर रह गया। यदि वे जानते नहीं थे तो उन्होंने यथा स्थिति, यथा स्थान, यथा भाव, चयन कैसे किया था ?

क्षीरसागर में माया के न रहने के कारण जल हिम खन्डों के रूप में स्थायी रूप से जमा रहता है। क्षीरसागर का तापमान भी शून्य से अत्याधिक नीचे रहता है। धरती पर जल के साथ ही शीत युग का

आरम्भ हुआ था। ग्रह की शीतलता ही ग्रह के जीवन का स्थायित्व है। उष्मा से प्रताड़ित ग्रह शीघ्र ही जीवन और वैभव को खोकर अपने अस्तित्व का सशंकित करने लगता है।

जल के सफल अवतरण के उपरान्त पुनः जीवन को धरती पर उतारने के प्रयास में सब जुट गये। इसका वर्णन अग्निपुराण तथा नाना पुराणों में है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को सफलतापूर्वक विकसित तथा व्यापक रूप से भूमंडल पर स्थापित करने के उपरान्त जीवधारियों की क्रमबद्ध अवतरण, उत्पत्ति तथा वृद्धि की गयी। इसकी स्पष्ट चर्चा तथा उल्लेख हमें श्रुतियों, संहिताओं, पुराणों तथा वेद में मिलते हैं।

लम्बे निरन्तर अथक प्रयासों के उपरान्त एक वीरान बियाबान शून्य में मौन खड़ा ग्रह जीवन के कोलाहल से चहक उठा। महाराज सगर का सपना पूरा हुआ। उनकी स्मृति में हमने बड़े जलाशयों को सागर नाम दिया। सगरस्य अपत्यम्। सागरम्।। जीवन को ग्रह की माया में विकसित करने पीछे हमारे उद्देश्य क्या थे ? किन कारणें से हमने इस ग्रह को जीवन्त किया ? उनमें कुछ इस प्रकार :–

१– इस आकाशगंगा को भली प्रकार से जानना। विभिन्न परिस्थितियों का समयबद्ध ज्ञान विवेचन।

२– सृष्टी, प्रलय और विकास का विभिन्न परिस्थितियों में क्रमबद्ध विकास, शोधन, परीक्षण।

३– प्रकृति का सूक्ष्म दर्शन। प्रकृति प्रदत्त विनाश लीलाओं पर नियन्त्रण।

४– मृत्युन्जय अवस्था अर्थात मोक्ष की सामर्थ्य को पाना।

५– ज्ञान विज्ञान में पारन्गत होकर पुरूष तथा प्रकृति के वरद पुत्र बनना। आदि।

मानव के साथ ही उतरे थे वेद और ज्ञान विज्ञान। देवयानो की संस्कृति। सचराचरके सूक्ष्म रहस्यों को खोजता मानव ! नाना लोकों से उतरीं जीवन की नाना धारायें, उनके रूप, सामर्थ्य, मान्यतायें और नाना जीवन पद्यतियां ! धरा, वसुंधरा हो उठी।

ज्योतिर्वेद के अनुसार इस धरती पर एक विशालकाय द्वीप पर सर्वप्रथम जीवन उतारा गया था। उस द्वीप का नाम 'जम्बुद्वीप' रखा गया था। गणना के अनुसार इस द्वीप को एटलान्टिक सागर में कहीं पर डूबा हुआ होना चाहिये। जीवन लम्बे समय तक विकसित होता रहा। इसका प्रसार धीरे धीरे सारे भूमंडल पर फैलता चला गया। सबकुछ ठीक चल रहा था। जम्बुद्वीप का मुख्य भाग भरतखण्ड के नाम से जाना जाता था। यही जीवन का प्रधान सूत्र था। सुदूर पर्वतों पर श्वेत उज्जवल विशालकाय हिमखण्डों के विशाल क्षेत्र सुशोभित थे। त्रेतायुग धीरे धीरे वर्तमान से फिसलकर इतिहास के पन्नों में सिमटने की तैयारी में जुटा हुआ था। तभी.............!

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• वह रात !

धरती पर जल का अनुपात लगभग बीस गुना था। केवल दस प्रतिशत जल के रूप में नदियों में प्रवाहित होकर सागर में व्याप्त होता था। शेष लगभग ६० प्रतिशत जल पर्वतों पर जमा रहता था। सम्पूर्ण भूमंडल वन्य सम्पदाओं से परिपूर्ण था। ज्ञान विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर था। सबकुछ ठीक चल रहा था। तभी एक विशालकाय धूम्रकेतु पृथ्वी की कक्षा में प्रवेश कर गया। आसमान पर दूर से एक चमकता हुआ सितारा कुछ गोलाई से तीव्र गति से धरती की ओर आ रहा था। किसी ने उसे विशेष महत्त्व नहीं दिया। देवयान भी जब आते थे तो ऐसे ही दिखते थे। सबने देवयान ही समझा। फिर गगन से जलता हुआ लावा हर ओर बरसने लगा। वह रात बहुत भयानक हो उठी। निरीह जीवधारी आग में आहुतियां बन समाते चले गये। रक्षक और दिग्पाल भी स्तब्ध खड़े थे। पता नहीं वे चूक कैसे गये। पृथ्वी को दैवी आपदाओं से बचाने का भार उन्हीं पर था। वे निरन्तर वायुमन्डल में विचरण करते आकाश में ही रहते थे। उनका ही काम था कि ऐसी उल्काओं आदि को मार्ग में ही सूक्ष्म बिन्दुओं में विसर्जित कर दें। इसके लिये वे सदा पशुपतास्त्रों (ब्वेउपब ूत िमंके) से सुसज्जित रहते थे। कोई नहीं जानता भूल किससे और कैसे हो गई थी ! सबकुछ बदल गया था। उल्कापातों से शीतयुग का भी अन्त हो गया। सारा ग्रह गर्म हो उठा। ग्लेशियर हिमपिण्ड पिघलने लगे। बहुत तेजी से जल में बदलने लगे। पानी की सतह उठने लगी। उठती ही चली गई। भूखण्ड टूटकर बहने लगे। इसी घटना की चर्चा विश्व के सभी प्राचीन ग्रन्थों में हैं। कहीं ये मनु की नाव बनकर कथाओं में प्रकटे तो कहीं नोआ की नाव बन गये। सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप तबसे आजतक तैर ही रहा है। जी हां ! चौंकिये मत! आज भी आप मनु की नाव में ही हैं। तबसे तैर ही रहे हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी इसे मान लिया है कि सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप आज भी एक नाव की भांति तैर रहा है। मनु की कथा के सशक्त प्रमाण के रूप में सारा देश एक तैरती हुई नाव की भांति ही है। मात्र एक कील पर ऐशिया महाद्वीप की तलहटी पर टिका हुआ है। जैसे मछली के सींग की कथा सुना रहा हो।

ग्रंह आग उगल रहा था। हिम खण्ड पिघल कर धुंये और भाप के बादल बना रहे थे। धरती पर रह रह कर कम्पन हो रहे थे। सभी जीवधारी स्तब्ध अवाक इस महाविनाश की लीला को देख रहे थे। मैदानो में बसे जन जीवन जल धाराओं में डूबते जा रहे थे। पर्वतों पर बने आश्रमों में रहने वाले ब्रम्हचारी, वानप्रस्थी, सन्यासी तथा ऋषिगण भी आश्चर्यचकित इस दैवी आपदा का आंकलन कर पाने में असमर्थ थे। गर्म तेज आंधियां हर ओर से उठकर किसी भयानक तूफान का भ्रम उत्पन्न कर रही थीं। आसमान के सारे क्षितिज चमक से नेत्रों को चुंधिया रहे थे। यज्ञ हवन की अग्नियों को जल के द्वारा शान्त कर दिया गया था। गोशाला के अलाव भी बुझा दिये गये थे। गौओं को उनके बछड़ों के समीप स्वतन्त्र कर दिया गया था। भयभीत बछड़े माताओं के पेट के नीचे जा छिपे थे। निर्निमेष भाव से गौएं कभी कौंधती दिशाओं को देखती तो कभी अपने ऋषि रक्षकों को दयनीय याचना भरी निगाहों से मौन ही कुछ कहती सी लगती। और वह भूरी बिल्ली भी तो सभी जगह अपने बच्चे को खोज रही थी। भयभीत जिज्ञासा हर ओर निगाहों में थी, उत्तर किसी के पास नहीं थे। जीयेंगे या मरेंगे, कोई भी तो जानता नहीं था। क्या हो रहा है? इसका उत्तर भी किसी के पास नहीं था, क्योंकि पहले कभी ऐसा देखा अथवा सुना ही नही था।

आज भी तो मित्र मेरे! तू रहता एक ऐसे घर मे, जिसकी छत ही नहीं है। कोई भी धूम्रकेतु अथवा महाउल्कापात तेरे आंगन की हर खुशी को मिटा जायेगा। तब तो दिग्पाल और रक्षक भी थे। अब तो कोई कुछ जानता भी नहीं है। तुझे बम चाहिये थे अथवा जो रक्षा कवच हमें दे, ऐसा विज्ञान ? इससे पहले कि फिर सूनी हो हर आंगन की शाम, क्या इस दिशा में जागकर सोचना ना चाहिये हमें ?

एक महान संस्कृति सागर की अथाह गहराईयों में सदा के लिये समा गई थी। चारों ओर जल ही जल था जो निरन्तर उठता पर्वतों की चोटियों को डुबाने के लिये बढ़ा चला आ रहा था। सब भयभीत इस प्रलय को

देख रहे थे। मानव एक बार फिर प्रकृति के हाथों बुरी तरह पराजित हुआ था। यह पराजय तो पिछली पराजय से कहीं अधिक मंहगी थी। चन्द लोग ही बाकी थे इस पर्वत की चोटी पर। जन जीवन, सबकुछ मिट चुका था। जल तो बढ़ता ही जा रहा था। वह डरी हुई गिलहरी जल से बचने के लिये ऋषि के कन्धे पर जा चढ़ी थी। पानी घुटनो तक आ गया था। सारी आशायें धूमिल हो चुकी थीं। मृत्यु का वरण करना ही होगा। सबने मान लिया था। मन मौन अन्तिम प्रार्थनाओं में जा बसे थे। अब जीना भी कौन चाहता था !

तभी एक भयंकर तेज आवाज के साथ सारा पर्वत कांपने लगा। लगा खंडित होकर जल समाधि लेगा। ऐसा नहीं हुआ, वह ऊपर की ओर तेजी उठने लगा। पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ, फिर धीरे धीरे विश्वास हो गया कि हम सब पर्वत सहित जल की लहरों में तैरने लगे हैं। जल तेजी से घटने लगा था। मूसलाधार वृष्टि निरन्तर थी। कितने दिन, कितनी रातें हम सब विक्षिप्त से तैरते रहे हैं, कौन जाने !

इस घटना के साक्षी सभी प्राचीन धर्म तथा धर्मग्रन्थ हैं। इस प्रलय के उपरान्त धरती का स्वरूप ही बदल चुका था। साम्राज्य सागर बन गये थे। नये महाद्वीपों के रूप धरती ले रही थी। इसी काल में सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान, वेदादिक ग्रन्थ, ज्योतिर्वेद और मनुस्मृति सहित सभी स्मृतियां लुप्त हो गईं। हम अतीत की धरोहर से कंगाल हो गये। जम्बुद्वीप सदा के लिये जल में समा गया। आज सम्भवत जिसे हम अतलान्तिक सागर कहते हैं, कभी यही जम्बुद्वीप था। भरतखण्ड के विशाल भाग तैरते हुए ऐशिया महाद्वीप से जुड़ गये। इसी का नाम भारतदेश है। इसी के टुकड़े अन्य महाद्वीपों से जुड़कर उनके अंग बन गये। यह घटना रामायण काल के उपरान्त त्रेतायुग के समापन काल में हुई थी।

जिस आकाशगंगा से जीवन का स्थानान्तरण हुआ था, वह भी अपने परिक्रमापथ पर हमसे निरन्तर दूर हटती जा रही थी। उससे हमारे सम्बन्ध दूरियों के कारण मृतप्राय थे। जब हमारा सौरमन्डल सतयुग में

पुनः प्रवेश करेगा तब हम अपने जन्मदाता ग्रह के समीप होंगे। इसका विस्तार हम आगे यथा समय करेंगे।

आज भी पूजा में हम जिस पहचान की चर्चा करते हैं,'अष्टाविंशितमेयुगे कलियुगे, कलि प्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भरतखण्डै...।' हम आज भी नहीं भूले हैं अतीत की कहानी हमारी ! उन क्षणों की प्रत्येक अनुभूति आज जीवित है। हमारी धड़कनों में ! हमारी सांसों में ! जीयेंगे सदा वे क्षण हर जनम ! हर बार ! कैसे भुला सकते हैं हम ! वे क्षण मात्र ही तो बचे रह गये हैं, बनकर पुरखों की धरोहर !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• उस रात्रि के उपरान्त !

उस एक बहुत लम्बी रात के बाद सबकुछ बदल चुका था। धरती और आकाश भी बदल गये थे। अब न कोई आकाश से उतर कर आयेगा, और ना ही यह वह धरती ही है। अब तो स्वयं को भी नहीं पहचान पाते हैं हम। इस धरती पर मानव को फिर से जन्मना होगा। सारा अतीत एक कपोल कल्पना भर बनकर रह जायेगा। जो था, अब नहीं रहा ! दिखेगा भी नहीं! फिर कौन करेगा विश्वास उसपर! सदमाग्रस्त बचे कुछ लोग, असह पीढ़ाओं को झेलते हुए! अचानक सबकुछ मिट गया, सबकुछ बदल गया। प्रकृति और समय, अपना खेल खेल गये, ठगा का ठगा रह गया मानव ! अपने ही खेल में बौना बनकर रह गया। समय एक काली अन्धेरी गुफा से निकलता चला गया। द्वापरयुग के प्रवेश द्वार पर आ खड़ा हुआ।

यह वह युग है, जहां मानव अपने होने के कारण भी भुला बैठा है। धरती पर उभर आये नये द्वीपों पर जिन्दा रहने के साधन खोज रहा है। आवागमन और पहचान, सबकुछ तो लुट चुका है। उसे पिछला सबकुछ भूलता जा रहा है। पेट की भूख ही उसकी सबसे बड़ी समस्या है। पेट की भूख उसे बहुत डराती है। उससे आगे वह कुछ सोच भी नहीं सकता है। जीना बहुत मुश्किल है। खुद जीये या औरों को जिलाये ? अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये उसे स्वार्थी होना ही पड़ेगा। जो कभी प्रकृति को नयी पहचान देने की सामर्थ्य रखता था, अब वही प्रकृति में अपनी पहचान और जीवित रहने के आश्वासन खोज रहा था। वन्य प्राणियों, हिंसक जीव जन्तुओं से जीने की कला सीख रहा था। पृथ्वी पर उभर आये द्वीपों पर वह अपने जैसे लोगों की खोज कर रहा था। समय निर्बाध गति से बढ़ रहा था। मानवता, मानवीय मूल्य, मानवीय आचरण आदि से नितान्त अनभिज्ञ, भयभीत अवस्था में अपने अस्तित्व को बचाने में जुटा हुआ था। पेट की भूख और अस्तित्व की लड़ाई के लिये वंश की वृद्धि उसे पशु के स्तर तक उतार लाई थी।

धीरे धीरे उसने कबीलों का रूप धारण किया। समूहों में सुखपूर्वक जी रहे पशुओं की नकल करने लगा। भविष्य के भय से उसमें संग्रह की

मनोवृतियां पनपने लगीं। कल के भय को आज ही निर्मूल करना उसका चरित्र बनने लगा। कबीलों ने सत्ता की भावना को प्रबल किया। वह भी हिंसक पशुओं की शैली अपनाने लगा। कबीलों के खूनी संघर्षो से इतिहास लहुलुहान होने लगा।

सम्पूर्ण पृथ्वी पर मानव छोटे छोटे कबीलों के रूप में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा था। वर्तमान प्रकृति तथा नाना जंगली जीवधारियों में अपनी पहचान खोजता नये कानून और व्यवस्थायें बनाता कहीं यायावर तो कहीं बस्तियों, जनपदों और साम्राज्यों के रूप में प्रकट होने लगा था। इस अन्तराल में उसका अतीत लुप्तप्राय होकर रह गया था। अतीत के नाम पर उसके पास ढेर सारी कल्पित कहानियां थीं, जिन्हें उसने बचपन में पुरखों से सुना था और जिन्हें वह अपने नन्हें पौत्रों को सुनाकर धन्य होता था। इन्हीं कहानियों में ही उसका धर्म कर्म और आस्थायें निहित थीं। ईश्वर की चर्चा आने पर अनजाने ही आसमान की ओर उसके हाथ उठ जाते थे। मरने के बाद उसके जीवात्मा को आसमान में कहीं जाना होगा, बस इतना ही उसे याद था। समय का अन्तराल सदियों अथवा सहस्त्राब्दियों जितना छोटा भी नहीं था। इस अन्तराल में लाखों वर्ष समा चुके थे।

एक दूसरे से सर्वथा अनभिज्ञ मानवसमूह अपनी मान्यताओं के अनुरूप अपनी नई सभ्यताओं को नये परिवेश देकर स्थापित कर रहे थे। दूसरे कबीलों को लूटना, उनको मिटा देना कहीं धर्म था तो धर्म के नाम नारीत्व का षोषण कहीं पवित्र धर्म बन गया था। वीर भोग्या वसुन्धरा ही उनका धर्म बनकर रह गया था। उन्होंने हिंसक पशुसमूहों से इसे धर्मपूर्वक ग्रहण किया था।

आज भी मानव मस्तिष्क अपने भीतर सुषुप्त अवस्था में पशुता की इस पंगुता से कहीं न कहीं बन्धा हुआ है। एटम बमों के दांतों से मुंह को सुसज्जित कर विश्व शान्ति की बात करता है। बमों को बनाने, उनकी सामर्थ्य को पाने से गौरवान्वित भी होता है। हिंसक पाश्विकता आज भी

हममें सुखपूर्वक गर्वसहित जीती है। मानवीयता इसकी दास भर बनकर रह जाती है।

जम्बुद्वीप से छिटक कर अलग हो गये भरतखण्ड में स्थितियां सर्वथा अन्य विश्व के हिस्सों जैसी नहीं थी। क्षत–विक्षत भरतखण्ड भारती ने अपने टुकड़ों को सहेजना समेटना आरम्भ कर दिया था। ऋषिकुल और गुरूकुल धीरे धीरे फिर अस्तित्व में आने लगे। एक महाविनाश की पीड़ा की कसक लिये मानवता पुनः स्वयं को व्यवस्थित करने में, अपने सीमित तथा विखण्डित साधनो के साथ जुट गई थी। परिस्थितियां यहां पर भी अति भयावह थी। अस्तित्व की लड़ाई यहां पर भी अन्य जगहों जैसी ही थी। समय के लम्बे अन्तराल मानव स्मृतियों को दीमक की भांति खाकर खोखला करते जा रहे थे। अपने ही उद्गम से कट गया मनुष्य अपनी पहचान भी खोता जा रहा था। उसे भूलती जा रहीं थी आकाश गंगाओं की बाते, उसके अस्तित्व की कहानी। कटी पतंग की भांति धरती पर छितराया मिट्टी में अपने होने के कारण खोजने लगा था वह!

वह यह भी भूल चुका था कि वह जीव है। उसका जन्म क्षीरसागर में हुआ था। वह स्वयं में मैथुनी सृष्टी नहीं है। मैथुनी सृष्टी से केवल उसका रक्षाकवच ही बनता है जिससे वह माया में सुखपूर्वक रह सके। माया (ळतंअपजल) में उसे रक्षाकवच (शरीर) की आवश्यकता होती है। निजस्थान अर्थात क्षीरसागर में वह बिना शरीर के सहज स्वभाविक रूप में रह सकता है। जिसप्रकार सागर में गोताखोर को आक्सीजन का चैम्बर पहनना जरूरी है उसीप्रकार जीव का शरीर रूपी चैम्बर माया में पहनना आवश्यक है। शरीर रूपी घर की संरचना माया में रहने की सुविधा के हित में ही की गई है, धरा का मानव सबकुछ भूलने लगा था। उन्नत विज्ञान, आकाशगंगाओं को चीरकर पार करते देवयान, नाना ज्ञान विज्ञान सबकुछ कपोल कल्पित लगने लगे थे। पेट की रोटी, बच्चों सहित सिर छिपाने के सुरक्षित स्थान, आने वाले कल के जाने अनजाने भय, उसका जीवन बनकर रह गये थे। अन्तराल थे लाखों वर्षो के, अनगिनत पीढ़ियों के ! कैसे याद रख पाता वह ?

आकाश से कटे, धरती पर दीन अनाथ से बिछे, भयावह विपरीत परिस्थितियों को झेलते लाखों वर्षों के अन्तरालों ने उसमें व्यापक परिवर्तन कर दिये थे। उसकी शारीरिक संरचना भी परिस्थितियों के अनुरूप काफी कुछ बदल चुकी थी। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। आकाश उसके लिये अजनवी हो गया और वह आकाश के लिये अजनवी हो उठा।

अब धरती ही उसका सबकुछ है। धरती ही उसकी सम्पत्ति है। धरती पर ही उसे जीना और मरना है। धरती ही उसका मान सम्मान, समृद्धि, आदर समादर है। शरीर ही उसका सर्वस्व है। इन्द्रियां ही उसका सुख हैं। विषय ही उसकी सुख समृद्धि हैं। विषयासक्त जीवन को बड़ी उपलब्धि मानता है। पेट और इन्द्रियों की भूख मिटा लेना उसकी बड़ी सफलता है। परन्तु फिर भी उसके मन के गहरे कोने में छिपा कोई घाव पुराना पीढ़ा की एक गहरी लहर उठा देता है। वह तड़प उठता है। अनजाने ही उसकी आंखें आकाश की गहराईयों में कुछ अबूझ अनजाना सा खोजने लगती हैं। फिर वह पूछ ही बैठता है,' कौन हूं मैं ?'

उसके पास बहुत से उत्तर हैं। उसने बहुत से उत्तर सम्प्रदायों में ढलकर घढ़े और खोजे भी हैं। जब नहीं हो पाया संतुष्ट तो उसने अपने को बहलाने के सैकड़ों बहाने भी खोज लिये, पर घाव इतना रहस्यमय है कि न भरता है और न ठीक से पता ही चलता है कि वह है कहां पर ? लगा था कैसे? भरेगा कैसे ? वह अब स्वयं को भ्रामक विषयों की समस्याओं में उलझाने लगाा है। धरती पर अपने नकली अस्तित्व के स्थायित्व के लिये साम्राज्यों को स्थापित करने में व्यस्त रहने लगा है। खोल (शरीर) को ही अपनी पहचान बनाकर वस्तुस्थिति से भागने लगा है। खोल से जुड़ी इन्द्रियों को ही आनन्द और रस मानकर अपनी सत्य हताशा से बचने के प्रयास में निरन्तर स्वयं को बहलाता रहता है। खोल को ही जीवन मानता है। खोल के परित्याग को ही मृत्यु मानकर सदा मृत्यु से भयभीत रहता है। शरीर और इन्द्रियों को ही सुख और जीवन का सर्वस्व मानता है।

जीव तथा आत्मा को वह कोरी भ्रमात्मक कल्पना भर मानता है। सृष्टा के नाम पर बस आसमान भर घूर कर देख लेता है। कभी सिर भी झुका लेता है। मन करता है तो ईश्वर के नाम पर कभी कुछ दानादि भी कर लेता है। कुछ अनजाने भयवश, कुछ लोभवश और कुछ दम्भवश।

आसक्त गृहस्थ कर्म ही उसका नया गृहस्थधर्म है। जीवन को पाठशाला तथा प्रंकृति को पाठयक्रम अब नहीं मानता है वह। उसने धर्म की पहचान भी खो दी है। साम्प्रदायिकता को ही धर्म मानने लगा है वह। ईश्वर से भी उसका तथाकथित सम्बन्ध अब लोभ, लाभ तथा बहुतकुछ पाने की लिप्सा भर है। उसे अपना अतीत, उसका मौलिक स्वरूप कुछ भी अब याद नहीं है। क्या कभी लौट पायेगा अपनी मौलिक अवस्था में ! क्या था उसका मौलिक रूप धरा पर ? कुछ कहानियां, कुछ मान्यतायें उन ज्योतिर्मय युगों की !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• रे जीव ! तू गगन का टूटा सितारा है !

ज्योतिर्वेद ने कहा,' जीव ही क्षीरसागर का देवता है। जब जब देवत्व गगन में खण्डित होता है, उसे पुनः अपनी सत्ता पाने के लिये धरती पर तपने के लिये आना पड़ता है। मृत्युलोकों की कल्पना का एक उद्देश्य यह भी है।' श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसका सर्वांग अनुमोदन किया है। मनुस्मृति का आधार ही यही है। इसे सरल करेंगे।

तेज से हीन हो गये जीव (देवत्व) को पुनः क्षीरसागर के योग्य होने के लिये तपस्या हेतु मृत्युलोक (पृथ्वी) पर जन्म धारण करने हेतु जाना पड़ेगा। पृथ्वी माया के क्षेत्र में है। जीव क्षीरसागर का वासी है। वह माया में रह ही नहीं सकता। क्षीरसागर की निरन्तरता उसकी अनिवार्यता है। उसे एक ऐसे शरीर अथवा खोल की आवश्यकता है जो मायाओं में भी उसके चहुं ओर क्षीरसागर की अवस्था निरन्तर बनाये रहे, जिससे जीव सहज स्वाभाविक अवस्था में निर्भय होकर अपना तप पूर्ण कर क्षीर सागर सत्ता सहित लौट सके। उसके लिये शरीर की कल्पना साकार हुई। शरीर के साथ यह भी आवश्यक था कि माया में ही यह शरीर अपने जैसे नये शरीर उत्पन्न कर सके जिससे भविष्य में भी इस प्रक्रिया को निरन्तर किया जा सके। मैथुनि सृष्टी की कल्पना को साकार किया गया। शरीर स्वयं को भी निरन्तर पुनर्निर्माण कर सके इसकी भी परमावश्यकता थी। माया निरन्तर शरीर को तोड़ती रहेगी। यह माया का परम धर्म है। माया को इसे धर्मपूर्वक निभाना ही है। इसी के लिये धरा को वसुंधरा बनाया गया। जल, वनस्पतियां तथा जीवधारी योनियों को प्रकट किया गया।

क्या आप जानते हैं कि आपका शरीर कुछ ही समय में निष्क्रिय हो जाता है। माया सहज ही इसे नष्ट कर देती है। मांस तथा हड्डियों के कोश कुछ दिनों में ही माया द्वारा मार दिये जाते हैं तथा रक्त के कण तीन महीना बीस दिन में माया मार डालती है। यदि शरीर आत्मशक्ति के

सहयोग से भोजन द्वारा इन कणों का नया निर्माण न करे तो कोई भी शरीर तीन महीने बीस दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यही जीवन का महाभारत है। शरीर रथ है, आत्मा श्रीकृष्ण सारथि तथा जीव महारथी अर्जुन ! कौरवी मायायें तथा जीवन सम्पूर्ण महाभारत !

एक और विकट समस्या भी थी। जीव का मानव योनि में प्रवेश करते ही उसके पूर्व ज्ञान का लोप हो जाना। जब उसे याद ही नहीं तो वह तप कैसे करेगा ? माया तो उसे सहज ही भटका ले जावेगी। माया में जीव असंयत होने के कारण विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त होता सबकुछ भूल जाता है। ऐसी अवस्था में उसे कोई ऐसी व्यवस्था भी चाहिये जो उचित मार्गदर्शन कर सके। इसी ने गुरूकुल तथा वर्णाश्रम धर्म की कल्पना को साकार किया।

अक्सर आपके मन में यह जिज्ञासा रहती है कि आपको पिछले जन्म का ज्ञान प्राप्त क्यों नहीं है। इसका समाधान करते चलें। आप अपने ज्ञान को रखते कहां पर हैं ? मस्तिष्क में ही तो ? मरते ही आपका मस्तिष्क शरीर के साथ चित्ता को अर्पित हो जाता है। केवल आत्मस्थ ज्ञान भर ही जीव अपने पास रख पाता है, इसी को संस्कारगत ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान को भी माया मिटाने का प्रयास करती है। उस अवस्था में जीव के पास पूर्व जन्म का कितना ज्ञान होना चाहिये ?

पृथ्वी पर जीवन को आवश्यकता के अनुरूप ढाला गया। ८४ लाख योनियां इसकी पाठ्यपुस्तक के ८४ लाख अध्याय बन गये। मनुष्य की योनि सालाना इम्तहान की घड़ी बनी। जीव छात्र कहाया और आत्मा परीक्षक। चारों आश्रम इसकी चार कक्षा कहलाये। यही मनु की व्यवस्था के रूप में जानी गई।

प्रथम कक्षा है अज्ञान रूपी शूद्रता, जन्म समय का सूतक। 'जन्मना जायते शूद्रा'। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र है। क्या वह जीव शूद्र है ? कदापि नहीं ! शूद्र तो अज्ञान को कहा गया है। अज्ञानी होने के कारण ही वह

शूद्र कहलाता है। तभी तो आगे कहा है,' जन्मना जायते शूद्रा; संस्कारात द्विज उच्चयते'। इसीलिये ब्राम्हण, क्षत्रिय अथवा वैश्य; किसी भी धर में बालक उत्पन्न होने पर छूत अर्थात सूतक का वास होता है। प्रत्येक नवजात शिशु की जन्मते ही नैसर्गिक रूप से एक ही जाति होगी – शूद्र ! बारहा दिन का सूतक (छूत) मनाया जावेगा। सारे घर में छूत लग जायेगी। पूजा पाठ, मन्दिर बन्द कर दिये जावेंगे। ऐसा क्यों ?

जब भी देवत्व क्षीरसागर में खंडित होगा, उसे धरा पर प्रायश्चित एवं तप के लिये जन्मना पड़ेगा। सबसे पहले जीव को प्रायश्चित के लिये बारहा योनियों में जाना होगा। जीव वहां पर प्रायश्चित में तपेगा। निर्मल होने पर ही मनुष्य की योनि में आकर तपस्या द्वारा खोया देवत्व पुनः प्राप्त करता क्षीरसागर लौट जावेगा। बारहा प्रायश्चित योनियों के प्रतीक के रूप में ही बारहा दिन का सूतक मनाते हैं।

बारहा दिन के उपरान्त घर भले पवित्र हो जायेगा, परन्तु बालक फिर भी शूद्र ही माना जायेगा। ब्राम्हण के घर में भी उसे शूद्र ही माना जायेगा। जबतक उसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होगा बालक शूद्र ही रहेगा। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार केवल गुरूकुल में ही होते थे। यहीं बालक शूद्र वर्ण की प्रथम कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रवेश करता था।

मनु की इसी अति प्राचीन परम्परा का निर्वाह हम आधुनिक रूढ़ियों में भी पाते हैं। उच्च कुलीन ब्राम्हण परिवारों में जब भी सन्तान उत्त्पन्न होती है, घर में सूतक का वास उसी क्षण मान लिया जाता है। घर में दाई के रूप में हरिजन जाति (शूद्र,चमार अथवा डोम) स्त्री ही बुलाई जाती है। छट्टी पर्यन्त जच्चा तथा बच्चा को जल अथवा भोजन उस दायी के हाथ से छुआकर ही खिलाया जाता है। आप इसे उन्नाव के बीस बिसवे के ब्राम्हण परिवारों में सर्वत्र देख सकते हैं। अन्यत्र भी आपको यह चलन व्यापक रूप में मिलेगा।

मनुस्मृति के नाम पर फैलाये जा रहे भ्रम से मनुस्मृति का दूर दूर तक

कोई सम्बन्ध नहीं है। मनु के पक्ष अथवा विपक्ष के लोगों ने कदाचित मनु को जानने का प्रयास ही नहीं किया है। मनुस्मृतियों के लुप्त होने की चर्चा स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में इस प्रकार की है:– अध्याय ४ के श्लोक १ व २। 'मैने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा। मनु से उसके पुत्र राजा इक्ष्वाकु को यह ज्ञान प्राप्त हुआ। १।। इस प्रकार हे परन्तप ! परम्परा से प्राप्त योग को राजर्षियों ने जाना परन्तु यह योग बहुत काल से इस पृथ्वीलोक में लुप्तप्राय हो गया।।२।।

श्रीकृष्ण का काल निर्विवाद रूप से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व है। उनके समय में मनुस्मृतियों का लोप हो चुका है। इसीलिये वे अर्जुन को उसी ज्ञान से परिचित करा रहे हैं। जब़ कृष्ण के काल में ही मनुस्मृतियां लुप्त हैं, तो हम कौन सी मनुस्मृतियों को लेकर राजनीति की रोटियां सेंक रहे हैं। श्रीमद्भगवतगीता ही मूल मनुस्मृति है। जिसका विवेचन स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कर रहे हैं। सृष्टी, प्रलय, पुनर्जन्म, कारण और उद्देश्य, रहस्य आदि का स्पष्ट, विशद एवं व्यापक व्याख्यायें मनुस्मृति का पूर्ण अवतरण ही तो है। आगे देखें :–

- **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।४/१३।।**
- **विद्याविनयसम्पन्नेब्राम्हणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः मदर्शिनः।।५/१८।।**

चारों वर्णो की सृष्टी गुण और कर्म के विभाग से हुई है (ना कि जन्मना)। विनयशील ब्राम्हण, गाय, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल में जो भेद नहीं करता वही पण्डित अर्थात इस ज्ञान (मनु) जानने वाला है। चारों वर्ण ही मनुष्य योनि की चार कक्षायें हैं। इन्हीं को जीव को पार करने के उपरान्त अनन्त की राह में प्रवेश मिलता है। अज्ञान की शूदता जन्मकाल की कक्षा। ज्ञानार्जन

हेतु गुरूकुल में प्रवेश ही उसकी दूसरी कक्षा है। अर्जन अर्थात वैश्य वृति, गुण और कर्म के विभाग से। गृहस्थधर्म उसकी तीसरी कक्षा है। गृहस्थधर्म को ही गुण और कर्म के विभाग से क्षत्रिय धर्म कहा गया है। वानप्रस्थ धर्म उसकी चौथी कक्षा है। गुण और कर्म के विभाग से वानप्रस्थधर्म को ब्राम्हणधर्म कहा गया है। सन्यास को कक्षाओं की अवस्था से ऊपर रखा गया है। यही आदि मनु है।

यदि जन्मना जैसी कोई व्यवस्था होती तो ब्राम्हण के घर छूत कदापि वास न करती। उसके बच्चे को भी यज्ञोपवीत होने तक शूद्र नहीं कहलाना पड़ता। गीता में भी उपरोक्त श्लोक नहीं होते। इसी व्यवस्था का अनुमोदन धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने नहुष संवाद में महाभारत महाकाव्य में किया है। इसी व्यवस्था को न समझ पाने के कारण उत्तंक ऋषि को मोक्ष अर्थात अमरपद को खोना पड़ा था।

मनु ने दो मार्गो की चर्चा की है। श्रीमद्भगवतगीता में भी उनका अनुमोदन किया गया है। गमन के दो मार्ग हैं। यथाः–

- **शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।**
- **एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।**

८/२६।।

इस शाश्वत जगत अर्थात सम्पूर्ण सचराचर की मृत्योर्परान्त गमन की दो गतियां हैं। एक शुक्लमार्ग है, जिसका देव (आत्मा) यान है। दूसरा धूम्रमार्ग (धुंवे की राह) है, जिसका पितृ (चित्ता की लकड़ियां) यान है। एक मार्ग में अनावृति अर्थात आवागमन नहीं है, जबकि दूसरे मार्ग में निरन्तर भटकते रहना पड़ेगा। मनु के कथन का शाश्वत दर्शन चलन आप उत्तराखण्ड में देख सकते हैं। शवदाह स्थान (श्मशान घाट) में दो स्पष्ट भाग किये जाते हैं, उत्तरायण तथा दक्षिणायन। उत्तरायण के देवता महाशिव हैं तथा इन स्थानो पर तपस्वियों की समाधियां ही होती हैं।

दूसरा भाग दक्षिण में होता है, जहां चित्तायें जलायी जाती हैं। इस मार्ग के देवता भैरव हैं, जो महाशिव के अवतार माने जाते हैं। यह सकाम मार्ग है। इसी को धूम्रमार्ग कहा गया है, इसका पितृयान है। जिन पेड़ों वनस्पतियों से यह शरीर बनता है; उन्हीं की लकड़ियों की गोद में जाने के कारण इसे पितृयान कहा गया है। शरीर की पितृ वनस्पतियां ही हैं। जलेगा मात्रा शरीर अर्थात वनस्पतियों द्वारा बनाया गया उनका पुत्रा ! जीव को कपालक्रिया द्वारा ब्रम्हरन्ध्र से अलग कर लिया जावेगा।

देव कहते हैं आत्मा को। आत्मा जो परमात्मा (परम् + आत्मा) का लीलावतार है। अमर आत्मा से योग (मिलन, जुड़ना, अद्वैत) कर, आत्मा के संग अनन्त की राह चला गया जो, देवयान से गया वह। अब उसकी पीछे लौट आने की वृति नहीं है। मनु: ज्ञान, विज्ञान, उच्चतम मनोविज्ञान तथा सृष्टी विज्ञान का सर्वोच्च शिखर है। उसे समझ पाना सरल नहीं है।

जब भी कोई व्यक्ति घर में ही मर जाता है, घर में पुनः सूतक (छूत) का वास हो जाता है। इस बार जन्मकाल के बारहा दिन के सूतक में वर्तमान जन्म का एक दिन और जोड़कर उसकी तेरहवीं मनायी जायेगी। फिर महाशूद्र हो गया। पहले बारहा योनियों में जाकर इसने अपने पूर्व काल के पापों का प्रायश्चित किया था। उपरान्त तप द्वारा अनन्त को पाने के लिये मनुष्य की योनि में आया। उसे गुण और कर्म के विभाग से वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए, अनासक्त भाव से आत्मा से योग करते अनन्त की राह लेनी थी। यह तो गुड़ में चिपकी मक्खी की तरह विषयों में ही चिपक कर रह गया। पिछले प्रायश्चित भी व्यर्थ गये इसके, एक जन्म के पापों का भार अधिक ओड़ लिया इसने। महाशूद्र घोषित करो इसे, तेरहवीं मनाओ इसकी। इसके पांव दक्षिण दिशा की ओर कर दो। ले चलो इसे दक्षिण दिशा की ओर श्मशान घाट में ! इसे पितृयान से गमन कराओ। देवयान खो दिया है इसने।

आदि काल से यही परम्परा रही है कि गांव अथवा जनपद के उत्तर में देवालय बनाया जायेगा तथा दक्षिण में शवदाह घर। उत्तरायण देवगोल है तथा दक्षिणायण यम गोल है। जब भी सूर्यदेव मकर राशि में प्रवेश करते

उत्तर गोल में प्रवेश करते हैं, सम्पूर्ण भक्त समाज मकर संक्राति को उत्तरायण पक्ष के रूप में मनाते हैं। इसे खिचड़ी का त्योहार भी कहते हैं। इसकी चर्चा श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में मनुस्मृतियों को स्पष्ट करते हुए की है।

श्मशान घाट में आये शव के विषय में मनु क्या कहते हैं ? इसको जानने के लिये संक्षेप में ही हमें उत्तरायण पक्ष को भी स्पष्ट करना होगा। देवालय में यज्ञ की कल्पना को साकार करें। यज्ञ की एक वेदी है, यह आत्मकुण्ड का प्रतीक है। वेदी में अग्नि प्रज्जवलित है, यह आत्मज्वाला रूपी जीवन ज्योतियों का प्रतीक है। सामिग्री, घृत, साकल्य तथा समिधा; भोजनादि का प्रतीक है जिससे हमारा शरीर बनता है तथा जीवन निरन्तर होता है। यज्ञाचार्य आत्मा अनन्त का प्रतीक है। उपाचार्य प्राणवायु का प्रतीक है। यजमान इस शरीर में व्याप्त जीव अथवा जीवात्मा का प्रतीक है। गुरूकुल में बालक को स्वयं से सुपरिचित कराने का यह प्रतीकात्मक माध्यम है। प्रतीकों द्वारा जीवन अक्षरों का सही पहचान ज्ञान। इसका व्यापक विस्तार हम ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के ११ सूक्त संग्रह में विस्तार से साख्य एवं प्रमाण सहित करेंगे।

तन (शरीर) रूपी सामिग्री को आत्मकुण्ड के सम्मुख बैठकर आत्माग्नियों में यज्ञ करते हुए, आत्मा तथा प्राणवायु के प्रति समर्पित भाव से अर्पित करते, आत्मा से योग द्वारा अद्वैत करते, अमर आत्मा के संग ब्रम्हाण्ड से गमन करना था। आत्मा ही देवयान है। जब आत्मा का यान उसे लिये बिना ही चला गया तो अब उसे पितृयान से जाना होगा। जिन वनस्पतियों के द्वारा उसका शरीर बनता तथा पलता रहा, वे सब ही देह की पितृ हैं। अब उसे उन्हीं वृक्षों की लकड़ियों के यान में यज्ञ होकर जाना होगा। आत्मयज्ञ में जीव स्वयं यजमान होता है। पितृयान यज्ञ में यजमान उसका बेटा होगा। जीव स्वयं यज्ञ के अधिकार खो चुका है।

अब यज्ञ का समीकरण बदल गया है। तन (शरीर) सामिग्री है। पितृ (पेड़ों की लकड़ियां) ही यज्ञ की समिधा हैं। ब्रम्हाग्नि का स्थान चाण्डाल के घर

की अग्नि लेगी। महापात्र ही आत्मा के स्थान पर आचार्य का पद ग्रहण करेगा। प्राणवायु उपाचार्य का स्थान उसका अनुगामी करेगा। पुत्र उस मृत व्यक्ति का यजमान बनेगा। पितृयान पर यज्ञ होकर जीव प्रायश्चित हेतु यथा योनि भटकने चल देगा। मनु अपनी व्यवस्था में उसकी तथाकथित भक्ति पूजा आदि का भान नहीं करेगा। उसकी व्यवस्था सबके लिये समान होगी। दशरथ को भी छूट नहीं मिलेगी। मनु की व्यवस्था सबके लिये समान होगी, यहां कोई मासूम न होगा। न्याय की तुला पर सबके साथ समान न्याय ही होगा।

परन्तु वह जायेगा कैसे ? मनु ने कहा उसे कपालक्रिया द्वारा उसका पुत्र शरीर से अलग करेगा। केवल शरीर रूपी सामिग्री ही जलेगी, जीव को कपालक्रिया द्वारा उसका पुत्र देह से अलग करेगा। इस जीव को अपनी उन्हीं आसक्तियों में भटकना होगा जिनके कारण इसने आत्मा अनन्त का तिरस्कार किया था। आत्मा के विपरीत विषयों की मक्खी बन बैठा, तभी तो साथ नहीं जा पाया। जिन अतृप्तियों के कारण इसने अति दुर्लभ मानव योनि तथा आत्मप्राप्ति के पवित्र उद्देश्य की अवहेलना की अब यह उन लिप्साओं में ही नाना योनि भटकता रहेगा।

सर्वप्रथम अपनी आसक्तियों के कारण उसे कपालक्रिया करने वाले पुत्र की देह में वास करना होगा। इसीलिये आज भी धर्मप्राण परिवारों में कपालक्रिया करने वाले को घर के लोग भी छूते नहीं हैं। वह घर के बाहर बरामदे में दसवां पर्यन्त रहता है। उसे घर के भीतर जाने की इजाजत नहीं होती। मान्यता यह है कि जीव अपनी अतृप्तियों के कारण उसकी देह में ही वास करेगा। जो जीवित रहते आसक्तियां न छोड़ पाया, आत्मा छोड़ बैठा पर आसक्तियां छोड़ना उसे मान्य न था। अब मरकर भला आसानी से कैसे छोड़ देगा ?

उसी की देह में प्रेत बनकर रहेगा। उसकी इन्द्रियों से गीता, भागवत, गरूड़पुराण आदि सुनेगा। दसवां (दस दिन उपरान्त दिया जाने वाला भोज) के ब्रम्हभोग को बेटे के शरीर में रहते हुए ग्रहण करेगा। तब कहीं

तृप्त होकर यथा योनि गमन करेगा। ब्रम्हभोज के अगले दिन लोग उसकी एकत्र करके लाई हुई भस्मी तथा अस्थियों में झांककर देखते हैं, कि कौन सा चित्र बना ? किस योनि में गया ?

मैंने बहुत से देशों में इसी से मिलती जुलती परम्परायें आदिम जातियों, जंगली कबीलों, बंजारा जातियों में देखी हैं। मुझे बहुत बार लगा है जैसे उनमें भी अनजाने ही मनु की स्मृतियां अपभ्रंश रूप में धड़क रही हैं। ये कबीले भले ही इस्लाम अथवा अन्य किसी युवा साम्प्रदाय के संग हो गये हों। उनकी गहरे पैठ गई मान्यताओं में स्मृतियों के अवशेष अभी भी जीवित हैं।

मनुष्य के मरने पर प्रेतात्मा का भय सभी जनजातियों में लगभग देखने में आता है। सभ्य जगत भी इससे सर्वथा अछूता नहीं है। लन्दन का सभ्य वैज्ञानिक जगत और जिप्सी मुझे बहुत बार एक ही धरातल पर मिले हैं। विश्वास और अन्धविश्वास में मात्र ढाई अक्षर की दूरी है, जो कभी भी हट सकती है। मैने इसे हटते देखा है। विश्वास और अविश्वास में तो नाम मात्र, एक ही अक्षर की दूरी है। बहुत बार यह मात्रं एक संकीर्ण विचार भर बनकर रह जाते हैं। इनका अस्तित्व मात्र कोरा भ्रम ही होता है। निर्णय मात्र इस संकीर्णता पर टिका होता है, मैं कर सकता हूं अथवा मेरी कर सकने की इच्छा है तो विश्वास है। नहीं कर सकता हूं अथवा नहीं कर सकने की इच्छा है तो अविश्वास है। ऐसा हो ही नहीं सकता, असंभव है आदि नाना नपे तुले निर्णय मैं न्यायाधीश बनकर सुनाने लगता हूं। शायद बहुत उछलने वाले शब्द 'ढोंग' 'पाखडं' इसी परिकल्पना की उपज हैं। किसी का कार्य को बिना जाने समझे करना ही ढोंग है। परन्तु उसी कार्य को कारण सहित जानकर समझकर करना बुद्धिमानी है। किसी कार्य की सामर्थ्य न होने पर भी करने का दुस्साहस ही पाखण्ड है। सामर्थ्य सहित करना सवर्था उचित है। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि अज्ञान ही ढोंग है तथा सामर्थ्य से परे साहस पाखण्ड है। इस परिभाषा में दोनो शब्द स्वयं में ही भ्रामक हो जाते हैं। उनका अस्तित्व ही सन्देहास्पद हो उठता है।

मनु प्रदत्त इन परम्पराओं ने मानवीय मूल्यों को लम्बे समय तक भ्रमित तथा भ्रष्ट होने से बचाये रखा। मानव जीवन को अनासक्त कर्म और धर्म का पाठ पढ़ाकर मानव को अनन्त से जोड़ने का अदभुत प्रयास है। मनुष्य आत्मिक आस्थाओं में ही बन्धकर सुखद वरद तथा उद्देश्य परक जीवन का प्रतिनिधित्व कर सकता है। व्यवस्थायें, और कानून उसे कदापि लम्बे समय तक नहीं बान्ध सकते। धर्म उसे आस्थापूर्वक आत्मा से बान्धता है। जबकि कानून और दूसरी व्यवस्थायें जो धर्म से बन्धी नहीं है, उनसे बचना चाहता है। आप दान करके अस्सीम सुख की अनुभूति प्राप्त करते हैं, परन्तु कर (टैक्स) चुकाते समय आपको ऐसा नहीं लगता। जबकि दोनो ही समान हैं। एक धर्म और आत्मा से बंधा हुआ है दूसरा कानून और व्यवस्था का अंग है। मनु की व्यवस्था में आत्मा के साथ ही सारी व्यवस्था और कानून प्रणाली की कल्पना है। उसने कानून और व्यवस्थाओं को भी धर्म का रूप देकर उन्हें जन जन के लिये सुखद एवं आनन्ददायक बनाया है। श्मशान भी अलग नहीं है।

देवयान से जाने के लिये व्यक्ति जीवन भर आत्मा को अर्पित होकर ही जीना चाहेगा। ऐसी अवस्था में स्वयं तो उच्च सुखद जीवन का आनन्द लेगा ही, दूसरे लोगों के लिये भी अनुकरणीय उदाहरण बनेगा। लोभ, मोह, कपट तथा आसक्तियों से हटकर जीने से उसका जीवन सहज ही पीढ़ाओं से रहित होगा तथा वह किसी का पीढ़क भी नहीं होगा। समाज को भी उचित दिशा प्रदान करेगा। आस्थावान जीवन ही उच्च परिपक्व सार्थक जीवन का मूल है। बालक गुरूकुल से ही निर्णय लेकर गांव की ओर लौटता है, उसे देवयान अथवा पितृयान में कौन सा मार्ग लेना है। एक मार्ग में आत्मा स्वयं यज्ञ का आचार्य है, प्राणवायु उपाचार्य है, ब्रम्हज्वाला यज्ञ की ज्वाला है तथा अनन्त की राह उसकी उपलब्धि होगी। दूसरा मार्ग चित्ता की लकड़ियों से होकर जायेगा, चाण्डाल के घर की आग चित्ता की ज्वाला बनेगी, महापात्र ही आचार्य और उपाचार्य होंगे, उपलब्धि के नाम पर अनन्त भटकाव तथा उनकी घुटन ही उपलब्धि होगी। जाना तो उसे पड़ेगा ही, सदा कोई रह नहीं सकता इस योनि में ! कैसे जाना चाहेगा वह ! १२ योनियों के प्रायश्चित के उपरान्त ही उसने

मोक्ष के लिये दुर्लभ मानव तन पाया है। वह किस प्रकार का जीवन चाहेगा ? वह तो लम्बी यात्रा का राही है। मानव की योनि कुछ देर का विश्राम ठहराव भर ही है। क्षणिक ठहराव के लिये वह सारी यात्रा का सत्यानाश तो नहीं करेगा। मनु उसे कुछ नहीं बतायेगा, मनु कुछ कहेगा नहीं। मनु सारे निर्णय के अधिकार उसे ही देगा और स्वतन्त्र होकर वह अपने निर्णय स्वयं करेगा। उसका निर्णय क्या होगा ? आप से पूछता हूं, आपका निर्णय क्या होगा ??

आपके कन्धों के ऊपर सिर है। सिर कन्धों के ऊपर ही होता है। कुदरत ने उसे उसी स्थान पर ही रखने के लिये बनाया है। सिर का काम सोचने समझने का है, पूजा भक्ति का है तथा शरीर सहित सम्पूर्ण जीवन को व्यवस्थित करने का है। शायद आपको पता नहीं है कि कन्धों पर रहने वाला सिर अपनी जगह भी बदल लेता है। कभी यह सरक कर पेट में चला जाता है तो कभी पेट से भी नीचे सरक लेता है। जहां भी रहे, सिर ही रहता है तथा सिर के ही सारे काम करता है।

जब यह कन्धे के ऊपर होता है, तो इसकी साधना, भक्ति, सोच, विचार सब जीवन के गहन चिन्तन और मूल उद्देश्यों के प्रति समर्पित भाव से जुड़े रहते हैं। तब यह उन्हीं के हित में सोचता है। जब यह सरक कर पेट में चला जाता है, तब करता यह पहले वाला काम ही है। परन्तु सबकुछ पेट को ही उद्देश्य मानकर करने लगता है। तब पेट, पेट से जुड़ा भौतिक जगत, आसक्तियां इसकी सोच के मूल उद्देश्य बन जाते हैं। ईश्वर की पूजा, भक्ति सबकुछ पेट के लिये होती है। भगवान में मिलने के स्थान पर भगवान को पेट के लिये ठगने की भक्ति करने लगता है। जब यही सिर पेट से भी नीचे सरक जाता है तो भी सिर करता वही सबकुछ है। बस उसके उद्देश्य भर बदल जाते हैं। विषय, वासना, कपट, ईर्षा, द्वेष आदि उसके पूजा, पाठ, भक्ति तथा सोच के मूल मन्त्र बन जाते हैं। तब वह ईश्वर से भी इन्हीं की कामना भक्ति करने लगता है। मनु की व्यवस्था में उसका सिर बचपन में ही गुरुकुल शिक्षा में कन्धे के ऊपर मजबूती से बंध जाता है।

गुरूकुल शिक्षा में उसे नित्य साधना, सन्ध्या आदि इसी उद्देश्य से कराये जाते हैं जिससे वह सावधानी पूर्वक अपनी वस्तुस्थिति का भान करता रहे। नित्य संध्या आदि में वह ज्ञात कर सके कि उसका सिर यथा स्थान पर है अथवा कहीं नीचे की ओर सरक तो नहीं गया है। ऐसा वह जीवनपर्यन्त करता था। गुरूकुल में ही उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता था। यज्ञोपवीत से उसकी जीवन डोर सदा के लिये आत्मा के साथ बान्ध दी जाती थी। एक अमिट अटूट बन्धन ! अनन्त तक न टूटने वाला सम्बन्ध !

मनु प्रदत्त व्यवस्था को समझकर ही हम जीवन पहेली के समाधान खोज सकते हैं। ज्योतिर्वेद के सूत्र भी मनु को जाने बिना स्पष्ट करना सम्भव नहीं होगा। क्या यह सही होगा कि सबसे पहले हम मनु को जाने ? कौन है यह मनु ? क्या है इसकी कहानी ? क्या यह कोई व्यक्ति हुआ है जो मनु के नाम से ज्ञात तथा विख्यात हुआ ? इसे सूर्य का पुत्र क्यों कहा गया ? आयें सर्वप्रथम मनु की कथा सुने। कहानी कल की, कल से आज तक और कहानी आने वाले युगों की ! मनु की कथा !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• मनु की कथा !

मनु की कथा नाना पुराणों में आयी है। मार्कण्डेय पुराण में यह कथा विस्तार से है। इस कथा को प्रत्येक छात्र गुरूकुल में सुनता था। मूल मनुस्मृति नामक यह रहस्यवाद की अनुपम कृति बहुत पहले लुप्त हो गई। ज्योतिर्वेद में कथा के रहस्य खुलते थे। महाभारत महाकाव्य में भी यह कथा मिलती है।

महाराज सत्यव्रत एक बहुत ही प्रतापी धर्मात्मा राजा हुए हैं। एक बार प्रातःकाल जब वह नदी में नहाने के लिये गये तो एक छोटी सी मछली उनके जलपात्र (लोट्टे) में आ गई। उसकी इच्छा के लिये राजन उसे अपने महल में ले आये तथा जल के एक बड़े पात्र में रख कर उसके भोजन सुरक्षा आदि की समुचित व्यवस्था करवा दी। कुछ ही समय में मछली आश्चर्यपूर्वक बड़ने लगी तथा उसे पात्र में घुटन होने लगी। महाराज ने उसे महल के तालाब में रखवा दिया। थोड़े ही समय में मछली का रूप तालाब से भी बड़ा हो उठा। उसे तालाब में भी घुटन होने लगी। अधिक बड़े तालाब की व्यवस्था हुई, परन्तु वह स्थान भी आश्चर्यजनक रूप से बड़ी होती मछली के लिये छोटा पड़ने लगा। हार कर महाराज उसे पुनः सागर में छोड़ने चल दिये।

सागर में पंहुच कर मछली ने राजन को आशीर्वाद दिया तथा भविष्य में होने वाले प्रलय तथा उद्धार के विषय में उसे बता कर उसे तैयार रहने के लिये सावधान किया। इससे कुछ अलग कुछ मिलती सी नोहा की नाव की कहानी पाश्चात्य जगत में भी मिलती है। महाराज सत्यव्रत ने एक विशालकाय नौका का निमार्ण करवाया। उसमें सभी प्रकार के जीवधारियों के जोड़े तथा उनके भोजनादि की व्यवस्था कर ऋषियों तथा अन्य लोगों सहित सवार होकर प्रलय की प्रतीक्षा करने लगे। नोवा की कथा में नोवा ने भी ऐसा ही किया था।

सागर में उत्ताल लहरें उठने लगीं, चहुं ओर गहन अन्धकार छाने लगा। मूसलाधार वृष्टि अनवरत हर ओर होने लगी। धरती जल में डूबती जा रही थी। असंख्यों प्राणी काल के विकराल गालों में समाते जा रहे थे। तभी वही विशाल मत्स्य प्रकट हुआ, उसने राजन को आदेश दिया कि वे नाव को उसके सींग के साथ बांध दें। चालीस दिन (कहीं अधिक तो कहीं कम भी) तथा इतनी ही रातें नाव जल में तैरती रही। महाराज तथा ऋषिगण इस समय में मत्स्य रूपधारी भगवान विष्णु से अमृत ज्ञान प्राप्त करते रहे, जो मत्स्यपुराण नामक ग्रन्थ में संकलित है। महाविष्णु के वरदान से महाराज सत्यव्रत वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी पत्नी का नाम शतरूपा था। इन्हीं से धरती पर पुनः मानव की सृष्टि हुई।

अन्य कथा में विश्वकर्मा ब्रम्हा के एक पुत्री थी, संज्ञा उसका नाम था। बचपन से ही संज्ञा को आसमान पर चमकने वाले सूरज से प्यार हो गया। उठते बैठते, सखियों के संग खेलते समय भी वह कनखियों से सूर्यदेव को निहारती रहती। उसका मन ही नहीं भरता। दिन दिन उसका प्यार और सूर्य को पाने की तड़प बड़ती जाती। रात्रि में सूर्य के न रहने पर उसे असह पीड़ा होती। संज्ञा ने मन ही मन सूर्यदेव को अपना पति मान लिया।

सृष्टिकर्ता विश्वकर्माब्रम्हा ने देखा उनकी बेटी बाल्यावस्था से युवावस्था की दहलीज पर आ खड़ी हुई है। उन्हें उसके विवाह की चिन्ता हुई। ब्रम्हा जी ने स्वयंवर के लिये पुत्री से अनुमति चाही तो संज्ञा ने स्वयंवर के लिये मना कर दिया। उसने कहा वह केवल सूर्य से ही विवाह करेगी।

पुत्री की इच्छा जानकर पिता ब्रम्हा भी स्तब्ध रह गये। उन्होने पुत्री को समझाया कि सूर्य से उसके विवाह का निणर्य सर्वथा विवेकहीन है। सूर्य में आग ही आग है। संज्ञा उसका ताप नहीं सहन कर पायेगी। उसके साथ गृहस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पिता समझाते रहे परन्तु संज्ञा का हठ अडिग था। हारकर ब्रम्हा जी सूर्य से मिलने चल दिये।

सूर्यदेव नियमित आकाश में रथारूढ़ जा रहे थे। उन्होने ब्रम्हाजी को अपनी ओर आते देखा। रथ को रोककर वे अभिवादन स्वरूप नतमस्तक हुये तथा आने का कारण पूछा। ब्रम्हा जी ने विस्तार से अपनी पुत्री संज्ञा की कहानी सुनायी तथा उसके हठ की चर्चा की। उन्होने सूर्य से संज्ञा के विवाह का प्रस्ताव रखा। सूर्यदेव ने पूछा कि क्या संज्ञा सूर्यदेव के ताप को सह पायेगी ? ब्रम्हाजी के अनुमोदन पर सूर्यदेव नतमस्तक हो गये। यथासमय सूर्य का विवाह संज्ञा से हो गया।

समय के साथ संज्ञा गर्भवती हुई। उसे एक सुन्दर मनोहर सन्तान की प्राप्ति हुई। बालक का नाम करण मनु के रूप में हुआ। सूर्य और संज्ञा की दो सन्ताने और भी हुई। बेटा यम तथा बेटी के रूप में यमुना। मथुरा के तट पर बहने वाली नदी का नाम मनु की छोटी बहन की स्मृति में यमुना कालान्तर में रखा गया था।

सन्तानोत्पत्ति के उपरान्त संज्ञा की देह क्षीण हो गई। सूर्य का ताप उसके लिये असहनीय हो उठा। वह भयभीत रहने लगी। सूर्य का सामना करने से कतराने लगी। सूर्यदेव भी इस उपेक्षा से दुखी हो उठे। संज्ञा के व्यवहार का कारण उनकी समझ से परे था। वे भी उपेक्षा के कारण दुखी रहने लगे। संज्ञा भी अपने व्यवहार से अत्यधिक दुखी थी। समाधान उसके पास भी नहीं था।

एक दिन वह सूर्यदेव के जाने के उपरान्त बाग में बैठी अपनी विवशता पर विचार कर रही थी। उसकी दृष्टि अपनी परछांई पर पड़ी। अपनी परछांई को देखकर उसके मन में एक विचार उत्पन्न हुआ। क्यों न अपनी परछांई को ही अपना रूप देकर संज्ञा स्वयं धरती पर जाकर तपस्या द्वारा पुनः शक्तिसम्पम्न होकर सूर्य के पास लौट आवे। तबतक उसकी परछांई ही संज्ञा के होने का भ्रम सूर्य के सम्मुख बनाये रखे। संज्ञा परछांई को अपना रूप देकर सूर्यलोक से लोप हो गई। धरती पर उसने अश्विना का रूप धारण किया और गम्भीर तपस्या में लीन हो गई।

अश्विना के दो अर्थ हैं। अश्विना यज्ञ की अग्नियों को कहते हैं तथा दूसरे अर्थों में घोड़ी (अश्व = अ + श्व।। मृत्यु से रहित आत्मा तथा समय के सदृश्य तीव्र भागने वाला घोड़ा जो अगले ही क्षण लोप हो जायेगा)। अश्विन सूर्य का नाम है। सूर्य की पत्नी होने से अश्विना नाम संज्ञा का स्वयंसिद्ध है। आश्विन एक महीने का भी नाम है।

कालान्तर में लम्बे अन्तरालों के उपरान्त जब कागज और छापाखाने का युग आया तो इन कथाओं की पृष्ठभूमि तथा रहस्य के अस्पष्ट होने के कारण इन कथाओं के साथ कुछ चाहे अनचाहे कथानक भी स्पष्टीकरण हेतु जुड़ते चले गये। न समझ में आने वाले कथानकों को कुछ फेरबदल के साथ समझने लायक बनाया गया हो, ऐसा सम्भव है। चलें गुरूकुल के प्रांगण में, इन अध्यात्मपरक कथाओं को उनके समय में जाकर जानने का प्रयास करें।

ज्योतिर्वेद में मनु काल की गणना का एक स्तम्भ है। ७१ गुणा ४३,२०,००० वर्ष = एक मनु। जितनी देर में पृथ्वी सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करती है, उसे एक संवतसर कहते हैं। यही एक वर्ष का प्रमाण है। ६४ संवतसर कहे गये हैं। प्रत्येक ६४ वर्ष के पूरे होने पर इनका चक्र पूरा होकर पुनः यही नामधारी चक्र नये सिरे से आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार १४ मनु हैं। जितने समय में पृथ्वी सूर्यदेव की ४३,२०,००० परिक्रमा पूरी करती है, सौर मंण्डल (सूर्य परिवार, सम्पूर्ण ग्रहों सहित) एक परिक्रमा देवलोक (आकाशगंगा) की पूरी करता है। इसप्रकार सूर्य का एक वर्ष पृथ्वी के ४३,२०,००० वर्ष के बराबर होता है। सूर्य के ७१ वर्ष ही मनु का सम्पूर्ण जीवन है। इस समय वर्तमान मनु की आयु २७ वर्ष व्यतीत होकर २८ वां वर्ष चल रहा है। वर्तमान मनु वैवस्वत हैं। यह मनुओं के क्रम में सातवें हैं।

मनु क्रम से इस प्रकार हैं:– १ स्वायंभुवः, २ स्वारोचिषः, ३ औत्तमः, ४ तामसः, ५ रैवतः, ६चाक्षुषः, ७ वैवस्वतः, ८ सावर्णिः, ९ दक्षसावर्णिः, १०

ब्रम्हसावर्णिः, ११ धर्मसावर्णिः, १२ रूद्रसावर्णिः, १३ देवसावर्णिः, १४ इन्द्रसावर्णिः।

इसी प्रकार ब्रम्हा की आयु का भी ज्ञान करते चलें। ४३,२०,००० वर्षों की एक चतुर्युगी कही जाती है। ऐसे ४ हजार चतुर्युग बीत जाने पर ब्रम्हा जी का एक दिन गत होता है। ब्रम्हा की आयु इस प्रमाण से १०० वर्ष की है। १०० वर्ष पूरे होने पर ब्रम्हा भी शान्त होते हैं। इसप्रमाण से इस समय ब्रम्हा की आयु ५० वर्ष पूरे करके ५१ वें वर्ष के प्रथम दिन का उदय होकर १३ घटी ४२ पल ३ विपल तथा ४४ प्रति प्रति विपल बीत रहे हैं।

मनु एवं ब्रम्हा ज्योतिर्वेद में काल निरूपण तथा काल गणना के स्थायी गणक स्तम्भ हैं। ये कोई व्यक्ति नहीं हैं। समय को नापने, जानने के इकाई स्तम्भ हैं। काश ! मनु के पक्ष और विपक्ष वाले जान सकते ? वे किसके पक्ष अथवा विपक्ष में आस्तीने चढ़ा रहे हैं तथा लाठियां भांज रहे हैं।

इतिहास के बहुमूल्य नायकों को अमर करने के लिये उनकी स्मृति को बनाये रखने के लिये उन्हें विशेष स्थान प्रदान करने की प्रथा रही है। महाराज सगर की महान स्मृति के लिये जलाशयों को सागर कहना। महाराज ध्रुव का नाम एक सितारे को प्रदान कर उनकी स्मृति को अमर करना। ऐसा आज भी होता है। महाराज सत्यव्रत को वैवस्वत मनु का पद देकर अपने इस जनक को अमर करना। इसमें असंगत कुछ भी तो नहीं है।

इस समय २०० के लगभग विश्व में ऐसे स्थान जिनका नाम बापु की स्मृति से जुड़ा हुआ है। क्या इनका बापु से कुछ लेना देना है ? इनमें होने वाली किसी भी घटना से बापु का क्या सम्बन्ध ? ऐसा ही मनु के साथ भी हुआ है। पुच्छल तारों के नाम उनके खोजने वाले वैज्ञानिकों के नाम पर आप आज भी रखते हैं। किसी वैज्ञानिक के अपराध को तारे को तो नहीं मढ़ देंगे ?

श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में जो सूर्य तथा सूर्य के पुत्र मनु की चर्चा की है, उसका खुलासा करने से पहले आपको मेरे साथ गुरूकुल में इस कथा को सुनने के लिये जाना होगा। आयें चलें !

कथा जो हम अभी सुन चुके हैं, उसे दुहरायेंगे नहीं। विश्वकर्मा ब्रम्हा हैं– परंब्रम्ह परमेश्वर ! सचराचर को उत्पन्न करने वाले। उनकी बेटी है जीवात्मा अर्थात हम सब ! संज्ञा कहते हैं पहचान को। हमारी पहचान अर्थात संज्ञा है जीवात्मा अथवा संक्षेप में जीव ! जीवात्मा संज्ञा क्षीर सागर में अपने उत्पत्तिदाता पिता ब्रम्हा के पास रहती थी। अपनी सखियों के साथ बचपन के भोले क्षण बांटती, खेलती सूरज से अनजाने ही प्यार कर बैठी। कौन है सूरज ? आत्मा !! सृष्टी के संचालन के हित में परमात्मा ने अपने ही रूप को असंख्य सूक्ष्म रूपों में प्रकट किया –' ऐकोहं बहुस्याम !'

आत्मा ही सूर्य है। सूर्य को हम जगतात्मा कहते हैं। सूर्य के जैसा आत्मा हम सब में रहता है। इसीसे रौशन होता जीवन हमारा, इसके हटते ही मृत्यु हमें उठा ले जाती है। यही सब मेरी कहानी के पात्र हैं। आत्मा सूर्य, विश्वकर्मा ब्रम्हा के आदेश पर सृष्टी संचालन के हेतु नित्य सेवा करता है। संज्ञा पिता के आंगन में भोले बचपन के सुख का आनन्द लेती सूर्य को दिल दे बैठती है। धीरे धीरे वह युवा होती है। पिता से सूरज को पति के रूप में पाने का हठ ठान लेती है।

संज्ञा का विवाह सूर्य से हो जाता है। जीवात्मा संज्ञा तथा आत्मा सूर्य दामपत्य धर्म में बंध जाते हैं। यही है हम सब की कहानी। इसे ही हम गायत्री मन्त्र में दुहराते हैं :–' तत्सवितुर्वरेणियम्'। ऐसे सविता (सूर्य) का हम वरण करते हैं। इस दामपत्य से पुत्र उत्पन्न हुआ मनु। मनु कहते हैं काल अथवा समय को। बीतते भागते क्षण जीवन के, दिन दिन युवा होता मनु, घटती जाती आयु, मेरे मन में ज़न्मता मृत्यु का भय, जन्म लेता दूसरा बेटा यम ! कमजोर और टूटी सी संज्ञा। आत्मा सूर्य का सामना करने में असमर्थ ! डरी, भयभीत, अपनी ही सांझ क़ी लम्बी परछांईयों से

आतंकित दहलती कांपती, सूर्य का सामना करने में असमर्थ, अतीत की परछाईयों में वर्तमान के समाधान खोजती। इसी समय में उत्पन्न हो जाती यम की बहन यमुना। मृत्यु में ही जीवन खोजने की हताशा मेरी। सूरज से बिछुड़ने की बेला ! यम है मृत्यु और उसकी बहन यमुना है नाना योंनियों में भटकती, प्रायश्चित की अग्नियों में झुलसती, योनि योनि नदी सी बहती मेरी कहानी, खोजती एक बार फिर आत्मा सूर्य का निर्मल आलिंगन ! संज्ञा और सूरज की कहानी ! मेरी तेरी गाथा !

पहले थी मैं ! अकेली संज्ञा – मैं। सूरज मिला तो हो गये हम ! मैं से हुये – हम ! एक से दो। अब आगे सुनो ! दामपत्य में नवप्रसून आये ! प्रसव से प्रगट हुआ पुष्प हमारा ! 'हम' में 'म' ही संज्ञा है। 'हम' के प्रसव में 'म' क्षीण हुआ प्रसव में और बन गया 'हम् +अ'। पुत्र, माता पिता की गोद में बैठता है। इसलिये पुत्र रूपी 'अ' जब गोद में आया तो शब्द हो गया 'अहम्'। क्षीण हो गई संज्ञा को तोड़ने लगा उसका अहम्। टूटने लगी गृहस्थी, सब सुख चूर हुए। अहम् से ईर्षा, लोभ, मोह, आसक्तियां और संज्ञा कतराने लगी है सूरज से। क्या हम में कोई पूरी ईमानदारी से अपनी ही आत्मा सूर्य का सामना कर सकता है ?

संज्ञा को लगा कि अब उसे जाना ही होगा। नियति उसे सूरज से अलग करेगी। यम और यमुना उसकी राह बनेंगे। यम उसे सूरज (आत्मा) से अलग करेगा और यमुना बहा ले जायेगी बची खुची उसके तन (अस्तित्व) की शेष रह गयी भस्मी। यूं लोप हो जायेगी संज्ञा ! उसका स्थान लेगी उसकी परछांई अर्थात उसकी भूली बिसरी यादें।

जब पता चलेगा सूरज को कि उसे छोड़कर चली गयी है संज्ञा। उसके स्थान पर मात्र उसकी परछांई है। तड़प उठेगा वह। सूरज (आत्मा) भी संज्ञा के बिना नहीं रह पायेगा। वह उसे अस्सीम प्यार करता है। संज्ञा तो उसकी प्राणवल्लभा है। फेंक देगा रथ की लगामें। रात के अन्धेरे में धरती के कण कण में खोजेगा। दिन में बनकर दिनकर धरती के कण कण से, बहती नदिया से संज्ञा का पता पूछेगा। यज्ञ की उठती ज्वालाओं

से संज्ञा का पता जानना चाहेगा। वह सूरज (आत्मा) है। संज्ञा (जीवात्मा) उसकी सहचरी है। उसके बिना कैसे रहेगा वह ?

योनि योनि खोजता सूरज ढूंढ़ ही लेगा सहचरी अपनी। उत्पन्न होंगे अश्विनी कुमार। जीवन के अमृत। सूरज संज्ञा को लेकर लौट जायेगा। एक युगान्तर कथा ! हम सबकी कहानी ! यूंही लौटते रहे हैं हम, यूं ही लौटते रहेंगे सदा ! सूरज का प्यार है अमर अस्सीम, वह यूंही तड़प कर लौटाता रहेगा हमें।

श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण के कहने का तात्पर्य भी यही है। परमेश्वर ने यह ज्ञान सूर्य अर्थात आत्मा को दिया। आत्मा से ज्ञान मनु अर्थात समय को मिला। मनु से यह ज्ञान इक्ष्वाकु (परम्पराओं तथा दूसरे अर्थों में मन) को प्राप्त हुआ। लम्बे काल तक व्यवहार में रहने के उपरान्त इसका लोप हो गया। इसलिये मैं इस ज्ञान को तुम्हारे लिये पुनः प्रकट कर रहा हूं।' यहां एक बात हमें सदा याद रखनी चाहिये कि महाभारत महाकाव्य लीला ग्रन्थ है। लीला शब्द से हमारा तात्पर्य है, 'सत्य का नाटकीय प्रस्तुतिकरण।'

मनु (काल) की एक पत्नी भी है। उसका नाम शतरूपा है। समय मनु की पत्नी कौन हो सकती है? शतरूपा अर्थात सैकड़ों रूप धारण करने वाली, बहुरूपिणी, महामायाविनी ? कौन हो सकती है ? समय की पत्नी है तथा नाम शतरूपा है। प्रकृति !!! जीहाँ ! प्रकृति ही हम सबके शरीरों की माता है तथा काल अर्थात समय ही हमारे शरीरों का पिता है। इसीलिये तो हमें मनुज भी कहा जाता है। मनु अर्थात समय की सीमा में जन्मने तथा समय की सीमा में ही मृत्यु का आलिंगन करने वाले। मनुज अर्थात 'मनु+ज', मनु के जाये, मनु से उत्पन्न हमारे शरीर !

यहाँ एक बात और भी स्पष्ट करना चाहूँगा। शरीर को ही मनुज कहा गया है। जीव अथवा जीवात्मा परम् पिता परमात्मा का पुत्र कहा गया है। मनु ने जीवमात्र को परमेश्वर का पुत्र कहा है। इसका स्पष्ट उल्लेख हमें

उसकी व्यवस्थाओं में मिलता है। भरखण्ड जिसे अब आप भारतवर्ष के रूप में जानते हैं, इसका पूर्व में स्थापित नाम रहा है। 'जम्बुद्वीपे भरतखण्डे' प्रत्येक धार्मिक कृत्य से पूर्व लिये गये संकल्प में आप इसका उच्चारण अवश्य करते हैं।

भरत शब्द का अर्थ वैदिक काल तथा मनु की व्यवस्था में है,' जो सबका भरण करने वाला है।' भरत परमेश्वर को कहा गया है। आत्मा जो परमेश्वर का लीलावतार है, उसे भी भरत कहते हैं। भरतार शब्द भी भरत से ही उपजा है। इसका अर्थ भी भरण पोषण करने वाला ही है।
चूँकि आत्मा ही जीव मात्र का भरण करने वाला है तथा आत्मा ही जीव मात्र का जनक है। इसलिये जीवरूप आत्मा के पुत्र होने के कारण हम सब की संज्ञा भारत हुई। हमारा जाति संज्ञक नाम आदिकाल से भारत ही है। 'भरतस्य अपत्यम् भारतम्, अस्य भारत'।

आधुनिक विश्वविद्यालय के विद्वत् समाज को एक राजा मिल गया, जिसका नाम भरत है। उन्होंने तुरन्त राजा भरत से भारत को जोड़कर नयी व्याख्या कर डाली। ऐसा करते समय वे यह भी भूल गये कि महाराज भरत तो बहुत ही उपरान्त हैं। चारों वेदों में भरत को भरतार अर्थात आत्मा अथवा परमात्मा के पर्यायवाची के रूप में सर्वत्र ग्रहण किया गया है। महाराज भरत से लाखों वर्ष पूर्व श्रीराम के अनुज का नाम भी श्री भरत ही है। इस शब्द का निर्वाह तुलसी तक बदला नहीं है।

- **'विश्व भरण पोषण कर जोई।**
- **ताकर नाम भरत अस होई।।'**

विश्व विद्यालय के विद्वत् समाज से हमें सहानुभूति ही हो सकती है। गुरुकुल शिक्षा में इसको लेकर कभी भी कोई भ्रम नहीं रहा है।' यह शरीर तथा जीव किसका ? जिसने बनाया उसका ! कौन बनाता इसे ? आत्मा , सोई इसका भरत ! तो तुम सब भारत हो, भरत के पुत्र !'

मनु ने भरत से भारत नाम जन जन को देकर जीवमात्र को एकत्व के सूत्र में बान्धने, भेदभाव को मिटाने का अदभुत प्रयास किया है। हम सब जन्मना भारत हैं। एक पिता भरत की सन्तान हैं। जन्म से हम सब एक हैं। 'एको ब्रम्ह द्वितीयो नास्ति !' इसलिये जो भी व्यवस्था होगी, वह गुण कर्म विभागसा ही हो सकती है। यह निर्विवाद रूप से स्वयंसिद्ध है। आदि काल से यह संस्कृति जाति के रूप में भी भारत जाति के रूप में ज्ञात रही है।

असुर संस्कृतियां ही आर्य अथवा आर्यन जाति के रूप में ज्ञात रही हैं। इन्हीं जातियों ने अपने प्रदेश जो बनाये थे, वे आर्याना अथवा इरान कहलाते थे। इनका अर्थ उनकी भाषा में था श्रेष्ठ लोगों का स्थान अथवा जमघट ! अब डी.एन.ए. से भी सिद्ध हो चुका है कि मूल भारत के लोगों का रक्त आर्य जातियों से सर्वथा भिन्न है। भारत तथा आर्य जातियां अलग अलग हैं। इसका विस्तार साक्ष्य एवं प्रमाण सहित हम आगे चलकर करेंगे। अभी केवल विषय से परिचित हो रहे हैं।

मनु की भारत जाति ने सुर व्यवस्था जोकि मनु प्रदत्त थी, उसी को अंगीकार किया। जबकि आर्य संस्कृतियां असुरधर्मा कहलायीं। दोनो की मान्यताओं में क्षितिज की दूरियां थीं। सुर तथा असुर नाम उन्होंने अपनी अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वयं ग्रहण किये थे।

असुर मान्यता में जीव और ईश्वर (आत्मा) कभी एक नहीं होते। ईश्वर धरती से दूर आसमानों के उस पार, सातवें आसमान में रहता है। पवित्र दैत्य उसके प्रतिनिधि हैं। वे ही उसके भक्तों के लिये शुभ करते हैं। ईश्वर ने पुरूष प्रधान सृष्टी की है, केवल पुरूष के हित में। नारी मात्र पुरूष की भोग्या है। पुरूष को उसके साथ मन चाहा व्यवहार करने की छूट है। पुरूष चाहे तो उसका त्याग कर सकता है। परन्तु स्त्री ऐसा कदापि नहीं कर सकती। पुरूष उसे बेच सकता है, नारी इन्कार नहीं कर सकती। पुरूष उसे गिरवी रख सकता है अथवा किसी को तोहफा कर सकता है, नारी को उसका प्रत्येक निर्णय धर्मपूर्वक मानना होगा। वह

किसी अवस्था में इन्कार नहीं कर सकती। सम्पत्ति तथा सन्तान पर केवल पुरूष का ही अधिकार होगा, नारी इससे कतई वन्चित रहेगी। पुरूष के आदेश सभी प्रकार के नारी को सदा मानने होंगे, उसके आदेश पर उसे किसी भी पुरूष (उसके मित्र, आका इत्यादि) के साथ हमबिस्तर होना पड़ेगा, वह इन्कार नहीं कर सकती। पुरूष को एक से अधिक स्त्रियां रखने का अधिकार होगा, नारी ऐसा कदापि नहीं कर सकती।

चूँकि वह असुर है, सुरत्व से हीन (अ+सुर) है। इसलिये वह स्वतन्त्र है कि जो चाहे करे, जिसे चाहे भोगे। प्रकृति, पशु पक्षी, सभी जीवधारी उसके भोगने के लिये ही बनाये गये हैं। उनकी हत्या का उसे धर्मपूर्वक अधिकार है। चूँकि, उसकी मान्यता का ईश्वर जीवमात्र में न होकर, आसमानो दूर रहता है, इसलिये उसे किसी को भी भोगने, तड़पा तड़पा कर मारने के परम सुख का एकछत्र अधिकार है।

उसकी पूजा तपस्या भी ईश्वर से तन्त्रशक्ति पाकर और अधिक भोगने और सताने की है, जिसका उसे धर्मपूर्वक पूरा अधिकार है। उसकी आराधना साधना इसी उद्देश्य मात्र के लिये ही है। वह द्वैतधर्म का उपासक है। जहां जीव और ईश्वर कभी न एक थे, न हुवे हैं तथा न कभी एक होंगे। उसके अनुसार जीव अथवा जीवात्मा तीसरे आसमान तक ही जा सकता है। उसके आगे किसी भी हालत में उसका प्रवेश हो ही नहीं सकता। जबकि ईश्वर सातवें आसमान पर रहता है। मुलाकात भी सम्भव नही है। मनु इसे एक सिरे से अस्वीकार करते हैं।

सुर ने कहा,' मैं उसमें हूँ, वह मुझमें है और सम्पूर्ण सचराचर में है।' वह घट घट वासी है। वह मेरा सूर्य है और मैं जीवरूप उसकी संज्ञा ! हम एक दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते। सुर अर्थात देवत्व तो मेरा जनक है। बनके शबरी का राम आज भी वही प्रत्येक शरीर की आत्मा बन, जूठे बेरों की कथा दुहराता, जीवमात्र के जूठे भोजन को रक्त में बदलता है। शबरी का सम्मान जीवमात्र को देता है। वही समर्थ है भस्मी को पुनः जीवन्त कर वनस्पतियों का स्वरूप प्रदान करने में। वही अन्न को शिशु

का रूप प्रदान करता गर्भ में। होता जो वह केवल सातवें आसमान पर, गर्भ से न जन्मते शिशु ! सब देखते आसमान से बरसते शिशु, क्योंकि बना सकता मात्र वही !

मनु की कथा गुरूकुल में इसप्रकार है। परमेश्वर ने ग्रहों नक्षत्रों के साथ पृथ्वी को प्रकट किया। जीवधारियों से पृथ्वी चहचहा उठी। बनके आत्मा वह सृष्टी की संरचना में लग गया। आत्मा के रूप में वह निरन्तर सृष्टी में व्यस्त रहने लगा। उसने विचार किया कि क्यों न वह कुछ बुद्धि से वरद जीवों को बनाये जो उसकी बनायी सृष्टी में उसके सहायक हों। उसने मनुष्य को बनाया और कहा ,'मेरे बेटे मैंने तुझे सहयोग के लिये बनाया है। मेरी बनायी सृष्टी में मेरा सहयोगी बन। जिस बाग को मैं बना रहा निरन्तर, तू उसका माली हो जा।'

श्रीमद्भागवत महापुराण में जब उद्धवजी श्रीकृष्ण से मिलने के लिये देविका के तट पर जाते हैं तो उन्हें सन्यासी रूप में देखकर भावुक हो उठते हैं। तब श्रीकृष्ण उन्हें सांत्वना देते हुए उपदेश करते हैं। वहां भी इस तत्व की चर्चा होती है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि यादव संस्कृति भी शीघ्र विनाश को प्राप्त होगी। सागर के किनारे की घास उन सबको मार देगी। ऐसा क्यों होगा ? उत्तर में श्रीभगवान कहते हैः– ब्रम्हा ने प्राणीमात्र की सेवा तथा तप द्वारा परमपद की प्राप्ति हेतु ही मनुष्य योनि की कल्पना को साकार किया था। सचराचर एक बाग के समान है। ब्रम्ह ही सूक्ष्म आत्मा के रूप में इसे निरन्तर प्रकट कर रहा है। मनुष्य इस बाग का माली है। यदि माली धर्म विमुख हो बाग को नष्ट करने पर उतर आये और बाग को उजाड़ दे, तो माली को भी तो बाग के उजड़ने पर उजड़ना अर्थात नष्ट होना पड़ेगा।

सागर के किनारे की घास, इसे आप यूं भी तो कह सकते हैं 'डूबते को तिनके का सहारा।' श्रीकृष्ण ने कहा था,' जब भी धरती का मानव, प्रकृतिप्रदत्त उद्देश्य से विमुख होगा उसकी उपलब्धियां ही उसके विनाश का कारण बनेगी !' सागर के किनारे की घास, डूबते को तिनके का

सहारा ! यही जानकर आप जो सहारे बटोरते हैं, उनकी चिन्ता ही तो मारती है आपको ? निरूदेश्य जीवन की उपलब्धियों के तले दबकर मर जाता हूँ मैं ! मुझे मेरे और मेरी उपलब्धियों ने ही मारा सदा।

सुर विचारधारा की आदि मान्यता है कि मनुष्य प्राणी मात्र की निष्काम सेवा, तथा तप के लिये ही धरती पर आता है। मेरी स्थिति तो एक गोताखोर के जैसी है जो सागर की गहराईयों में शरीर रूपी आक्सीजन का चैम्बर (खोल) पहनकर उतर गया है। कुछ ज्ञान अर्जित करने गया है। सागर के रहस्यों का अन्वेषण ही उसका उद्देश्य हो सकता है। दूसरा उद्देश्य कुछ तप के मोती चुनना है, कुछ वहां के जीवन को जानने तथा उन जीवों की सेवा भी हो सकती है। एक बात निर्विवाद है कि वह वहां सदा रह नहीं सकता। सागर की तलहटी उसकी मातृभूमि नहीं हो सकती। वहां पर वह पृथ्वी जैसी सहज स्वाभविक अवस्था में रह नहीं सकता। उसे लौटना ही होगा।

ठीक उसी प्रकार मैं भी तो धरती पर आक्सीजन रूपी खोल (शरीर) पहना कर उतारा गया हूँ। यहां जल के जैसी माया है। माया (Gravity) में जीव अथवा जीवात्मा की वही अवस्था है जैसे मानव शरीर की जल में होती है। माया में उसे खोल अवश्य चाहिये। जहां वह इस शरीर रूपी खोल के बिना रह सकता है, उस स्थान को मायारहित अर्थात क्षीरसागर होना चाहिये। वही उसकी स्वभूमि होगी। माया में वह सदा परदेशी ही रहेगा। तब मैं भी तो सागर में उतरे गोताखोर की भांति ही हूं। कुछ तप के मोती, कुछ निष्काम आत्म समर्पित सेवा के पुन्य, लौटना होगा शीघ्र मुझे भी अपने स्वस्थान क्षीरसागर को। जो चूक जायेगा उसकी अकालमृत्यु निश्चित है। जल में डूबा गोताखोर जल में नाना योनियों में भटकता रहेगा बारम्बार। उसी प्रकार माया में अकाल मृत्यु को गया जीव, नाना योनियों में निरूदेश्य भटकता रहेगा, बारम्बार। जाने कब होगा उद्धार उसका, कब पायेगा मंजिल अपनी !

सुर का ईश्वर घट घट वासी कहाया। उसका भरत (भरतार, आत्मा)

उसमें ही वास करता है। इसलिये जहां उसने अपने स्थान बनाये, वे भरतखण्ड कहलाये। असुर का ईश्वर आसमानो दूर रहा। जहां वह रहा वे स्थान केवल उसकी मान्यता में श्रेष्ठ अर्थात आर्याना कहलाये। भरतखण्ड नहीं बन सके। तेहरान में सबसे बड़ा सम्मान 'आर्यमेहर' आज भी है तथा इसी नाम का विश्वद्यिालय तेहरान में है। यह सम्मान भारत में 'भारत रत्न' के समकक्ष है।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• वर्णाश्रम धर्म और यज्ञोपवीत !

वर्णाश्रम धर्म में प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र कहलाता है। दो ही अवस्थाओं में उसे मानव योनि में प्रवेश मिलता है। प्रथम, देवत्व के क्षीण होने पर पुनः तप हेतु उसे मानव योनि में संज्ञा और सूर्य की भांति आना पड़े। मानव योनि में तप हेतु प्रवेश से पूर्व, उसे प्रायश्चित हेतु १२ योनियों से गुजरना होगा। जन्मते ही १२ योनियों का प्रतीक १२ दिन का सूतक मनाया जायेगा। नाल काटने के लिये धानुक, चमार अथवा डोम जाति की दाई ही बुलाई जायेगी। जच्चा और नवजात शिशु को उसका छुआ अन्न जल ही दिया जायेगा। दूसरी अवस्था में मानव योनि से भटक कर लौट रहा है। उस दशा में भी उसे १२ योनि के प्रायश्चित से ही लौट पाना सम्भव है। कम से कम १२ योनि तथा अधिक की तो सीमा ही नहीं है। ८४ लाख योनि अथवा इससे कहीं अधिक भटकना पड़ सकता है। इस अवस्था में भी सूतक आदि पूर्व की भान्ति ही मनाया जायेगा। यह मनु की व्यवस्था है। इसे आज भी घर घर में यथावत मनाया जाता है। कुलीन ब्राम्हण परिवारों में इसे पूरी आस्था तथा कड़ाई से पालन करते हैं। सनातनधर्म के अनुयायी इसे पूरी आस्था से आज भी मनाते हैं। आधुनिक सामप्रदायिकता तथा मठाधीशवाद में सम्भव है कहीं इसके स्वरूप बदले हों, अन्यथा सम्पूर्ण भारतवर्ष में इसका पालन होता है।

घर के मन्दिर देवालय बन्द कर दिये जाते हैं, पूजायें बन्द हो जाती हैं। शुद्धि के उपरान्त ही घर पवित्र होता है। मनु की इन व्यवस्थाओं में एक कारण यह भी स्पष्ट दृष्टीगोचर होता है कि मनु मनुष्य को सदा लक्ष्य के प्रति जागृत रखना चाहता है जिससे उसके जीवन मूल्यों का ह्रास न हो। लक्ष्य से भटक गया व्यक्ति, पशु से निकृष्ट जिन्दगी जीता है। स्वयं तो अभिशप्त पीढ़ादायक जीवन जीता ही है, समाज के लिये भी महापीढ़क हो जाता है। मनु को खोकर हममें सुखी कौन है?

मुझे एक पुरानी घटना याद आती है। गांव में प्रत्येक वर्ष श्रीराम लीला होती थी। उस वर्ष भी सदा की भांति श्रीराम लीला हुई। कई दिन तक लीला का लोग आनन्द लेते रहे। अन्तिम दिन सदा की भांति शोभा रथ यात्रा निकाली गई। छोटे बच्चों को श्रीराम जानकी लक्ष्मण आदि स्वरूपों में सजाया गया। उनकी आरती उतारी गई। फिर रथ को पूरे जनपद में बाजे गाजे के साथ घुमाया गया। सभी स्थानो पर सजे हुए बालकों की आरती हुई। उन्हें मिठाईयां खाने को मिली तथा उनके माता पिता ने भी उनके चरण छुए, आरती उतारी तथा भोग लगाया। देर शाम जब रथ लौट कर लीला स्थल पर आया तो बच्चे तो पसर गये। कहने लगे कि वे न तो घर जायेंगे और न ही कमेटी के कपड़े, आभूषण आदि ही लौटायेंगे। कहने लगे,'हम तो यहीं रहेंगे। आप रोज हमारी रथयात्रा कराओ। न हम कपड़े देंगे तथा न ही गहने। बस हमें इसी प्रकार रोज घुमाओ। खूब सारी मिठाई खाने को मिलती है। मां बाप और सब बड़े लोग हमारे पांव छूते हैं, हमारी आरती उतारते हैं। घर में तो हमें ही सबके पांव छूने पड़ते हैं। आरती तो क्या, पिटायी ही होती है। हम तो यहीं रहेंगे, घर ही न जाते।'

लीला कमेटी के लोग परेशान हो गये। लड़के किसी की सुनने को तैयार ही नहीं। रोने लगे, गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगे। सब लोग हैरान परेशान, बच्चे कि मान के ही न दें। अन्त में कमेटी वालों ने डांट डपट कर जबर्दस्ती उनके कपड़े उतरवाये। रोते बच्चे घर को गये।

मित्र मेरे ! हमें भी कहां याद रहता है कि जगत एक नाट्यशाला ही तो है। चिता की लकड़ियों पर हमें भी अपना किरदार पूरा होने पर जाना होगा। सारे आभूषण कमेटी वाले जबरन उतार लेंगे, शरीररूपी वस्त्र भी नोच कर कहेंगे, ' यह कपड़ा तुम्हारा नहीं। यह तो जगतलीला कमेटी का है। इसे उतार कर जाओ। जब कोई नया किरदार आयेगा तो इसी की भस्मी से नया वस्त्र बनाकर उसे पहनायेंगे। यह शरीर रूपी वस्त्र भी

तुम्हारा नहीं है।' फिर क्या है हमारा ? क्यों लक्ष्यहीन सड़ी सी जिन्दगी जीते हैं हम लोग। क्या है हमारा, क्या ले जायेंगे साथ अपने ?

सम्भवतः मनु ने भी इसका विचार करके ही इन व्यवस्थाओं द्वारा मुझे जगाने तथा सावधान करने के प्रयास में उक्त व्यवस्थाओं को गुरूकुल से ही आरम्भ किया हो तथा जन्म समय से ही जीव को जगाये रखना उसका लक्ष्य रहा हो ?

जन्म के कुछ दिन उपरान्त घर तो पुनः शुद्धि द्वारा पवित्र हो जाता है, परन्तु शिशु के साथ ऐसा नहीं होता है। लगभग ११ वर्ष की आयु तक वह शूद्र ही माना जायेगा अथवा जबतक उसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होगा, वह शूद्र ही कहलायेगा। बिना यज्ञोपवीत के उसे सदैव शूद्र ही माना जायेगा। कुलीन ब्राम्हणकुल में जन्म लेने पर भी उसे बिना यज्ञोपवीत के शूद्र ही माना जाता है। इससे कतई स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वर्णव्यवस्था यज्ञोपवीत से है नाकि जन्म से। इसी को भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता तथा भागवत महापुराण में भी स्पष्ट किया है।

प्राचीन काल में यज्ञोपवीत केवल गुरूकुल में ऋषि द्वारा ही सम्पन्न होते थे। अन्य किसी को भी इसका अधिकार नहीं होता था। दासता के समय में गुरूकुल व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त इसे निर्वाह हेतु घर में करने लगे। यज्ञोपवीत जीवन यज्ञ (उत्पत्ति, प्रलय, उद्देश्य) को अर्पित होकर जीने का पवित्र संकल्प है। यज्ञोपवीत का रहस्य उसके नाम में ही स्वयंसिद्ध है। यज्ञ +उप +वीत अर्थात यज्ञ में व्याप्त होकर जीना। जीवन मूल्यों के हित में पूर्ण रूपेण अर्पित होकर, लक्ष्य को प्राप्त करना। इसका जन्मना व्यवस्था से कोई सम्बन्ध दूर दूर तक नहीं है। जो भी छात्र गुरूकुल में शिक्षा हेतु प्रवेश पाता था, उसे यज्ञोपवीत अनिवार्य रूप से लेना पड़ता था। महामुनि वसिष्ठ के आश्रम में श्रीराम के सखा निषाद बालक गुह्य का संस्कार हुआ था।

मनु की व्यवस्था में यज्ञोपवीत का अति महत्व है। इसके बिना व्यक्ति शूद्र

ही माना जाता था, भले ही उसका किसी भी कुल में जन्म क्यों न हुआ हो। यज्ञोपवीत के साथ गायत्री मन्त्र को जीवन मन्त्र तथा गुरूमन्त्र में के रूप में प्रदान करने की परम्परा आदिकाल से आधुनिक काल तक निरन्तर है।

गुरूकुल में बालक को लेकर उसके माता पिता अपने बन्धु बान्धवों सहित पधारे हैं। गुरूकुल में प्रवेश के उपरान्त बालक को लगभग १४ वर्ष तक वहीं रहना होगा। उसके स्वजनों को भी इतने काल तक उसका विछोह जीना पड़ेगा। उनके आंगन में खिला पुष्प उनसे अलग हो जायेगा। जब लौटेगा तो वह, वह नहीं होगा। उसके स्थान पर कोई अति मर्यादित युवा होगा। उसके भोले बचपन के क्षणें का सुख अब वे कभी नहीं उठा पावेंगे।

उन्हें याद है, कभी वे भी यूँ ही आये थे यहां पर, अपने अभिभावकों के साथ। कुछ उदास और कुछ खिले हुये। आज फिर समय (मनु) वही कथा फिर दुहरायेगा। जैसे वे बिछुड़कर अपनो से आश्रम के वासी हो गये थे, आज उनके स्वपनो का सुकुमार, कोमल, भोला, मनोहर, मनहर उनसे बिछुड़कर गुरूकुल वासी हो जायेगा। लौट जायेंगे वे उसके बिना।

आचार्यो द्वारा निर्देशित तथा पवित्र किया गया बालक, ऋषि के सम्मुख शिष्य रूप में ग्रहण किये जाने की प्रार्थना लेकर नतमस्तक खड़ा है। ऋषि उसे उपदेश कर रहे हैं, ' बालक ! मनुष्य की योनि, अति दुर्लभ ज्ञान की योनि है। ज्ञानहीन व्यक्ति शूद्र के समान है। उसका मानव जीवन में आना व्यर्थ है। परन्तु ऐसे ज्ञान के पन्डित उससे भी निकृष्ट कहलाते हैं जो ज्ञान को जीवन मूल्यों सहित धारण नहीं करते। ज्ञान तो पवित्र गंगा की भांति है। जिसप्रकार जल न मिलने पर व्यक्ति को प्यासे ही मरकर अकाल मृत्यु को जाना पड़ता है, उसी प्रकार अज्ञानी भी ज्ञान रूपी जल के बिना अकाल मृत्यु ही पाता है। उसे नाना पतित योनियों में असह पीढ़ाओं के साथ अनन्तकाल तक भटकना पड़ सकता है। ज्ञान तो अथाह गहरी गंगा के समान है। लक्ष्यहीन ज्ञान को प्राप्त तथाकथित ज्ञानी

भी उस तैराक की भांति अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है, जो व्यर्थ ही लहरों के साथ छेड़छाड़ करते हैं। जहां तुम्हे ज्ञान देना मेरा उत्तम धर्म है। वहीं मेरा यह भी परम कर्त्तव्य है कि ज्ञान से पूर्व मैं तुझे ज्ञान के लक्ष्य से वरद करूं। सर्वप्रथम हम तुम्हारा यज्ञोपवीत संस्कार करेंगे। तुम्हें तुम्हारा ज्ञान करवायेंगे तथा जीवन के मूल उद्देश्यों के प्रति जागरूक एवं सावधान करेंगे। उसके उपरान्त ही तुम शूद्रत्व का परित्याग कर गुरुकुल में ग्रहण के योग्य हो पाओगे।'

आप भी तो जानना चाहेंगे कि यज्ञोपवीत के तीन तागों में ऐसा क्या रहस्य छिपा हुआ है ? तीन तागे तीन पुनीत यज्ञों के अति बहुमूल्य रहस्यों के प्रति सदा सचेत रहने की शपथ हैं। जब भी बालक की निगाहें यज्ञोपवीत पर जायें उसे लक्ष्य के प्रति पुनः सावधान करें।

संक्षेप में, पहला सूत्र है सृष्टी के प्रथम यज्ञ का। किस प्रकार उसका शरीर भस्मी से अन्नादिक में पवित्र होकर प्रकट हुआ। वह लौट सका। पर्यावरण को परमेश्वर का मंदिर मानकर उनसे सेवक तथा पुजारी भाव से जुड़ना। पर्यावरण का समर्पित भक्त होना।

दूसरे सूत्र से उसे मानव जन्म में उसके होने के रहस्य व्यापक रूप में देते हैं। किसप्रकार अन्नादिक से उसने माता के गर्भ में शिशु रूप में जन्म पाया। माता अथवा पिता तो मात्र निमित्त हैं। वे अपने शरीर का एक रोमकूप भी नहीं बना सकते। फिर माता के गर्भ में शिशु बनाया किसने? कौन है जो उसके शरीर को अन्न, फलों और भोजन में उद्धार कर मानव योनि में ले आया ? यहां उसे ज्ञान मिलता है कि प्रत्येक शरीर यज्ञशाला है तथा ईश्वर आत्मा का स्वरूप धारण कर जीव को यथा सन्तति में प्रकट करता है। माता पिता के शरीर यज्ञशाला बनते हैं, जबकि वे दोनो निमित्त प्रतिनिधित्व को प्राप्त हैं। यज्ञेश्वर आत्मा ही सचराचर का मात्र जनक है। उसका धर्म है कि वह अभेद भाव से प्रत्येक शरीर को आत्मा का मन्दिर जानता हुआ, प्राणीमात्र का भक्त सेवक बने। अभी हम केवल विषय से परिचित हो रहे हैं। विस्तार यथासमय करेंगे।

तीसरा तागा यज्ञोपवीत का जीवन का तीसरा सूत्र है, जो मुझे मेरे शरीर का परिचय देता है। आचार्य बालक को बताते हैं,' देखो बालक ! तीसरा सूत्र तुम्हारे शरीर के प्रति है। इसी को तुम नित्य मन्दिर में आकर अभ्यास करोगे। तुम्हारा शरीर आत्मा का मन्दिर है। जब तुम बैठते हो पालथी अथवा यथा आसन में हम उसी का प्रतीक मन्दिर का चबूतरा बनाते हैं। फिर तुम्हारे धढ़ (शरीर का मध्य भाग, पेट एवं वक्ष स्कन्ध) के जैसा ही मन्दिर का गोल कमरा बना देते हैं। तुम्हारे सिर के जैसा ही मन्दिर का गुम्बद बनाते हैं। केशराशि के जूड़े के जैसा गुम्बद के ऊपर कलश स्थापित करते हैं। आत्मा जैसी देव की मूर्ति स्थापित करते हैं। जीव अथवा जीवात्मा जैसा पुजारी। यही मन्दिर बनाने की आदिकालीन भावना है। पल्थी के जैसा चबूतरा, तन के जैसा कमरा, सिर के जैसा गुम्बद, जूड़े के जैसा कलश, आत्मा जैसी मूरत और जीव के जैसा पुजारी। हमारे द्वारा बनाये गुरूकुल के इस मन्दिर में तुम्हें परमेश्वर द्वारा बनाये अपने शरीर रूपी मन्दिर को स्पष्ट पढ़ना होगा। तुम्हारा शरीर आत्मा की पवित्र धरोहर है। तुम इसमें मात्र निमित्त पुजारी अर्थात सेवक हो। इसे तुम नहीं, आत्मा ईश्वर ही बना रहे हैं। शरीर को केवल आत्मा के धर्म के लिये ही धारण करोगे। पुजारी मन्दिर को सदा पवित्र रखता है। मन्दिर को पवित्र तथा ईश्वरीय कारणों से ही प्रयोग करता है। तुम भी अपने शरीर का ऐसा ही प्रयोग करोगे।'

तुम्हें तीन सूत्रों के यज्ञोपवीत को धर्मपूर्वक धारण करना होगा। इन्हें ही अपने जीवन का मन्त्र तथा मार्ग बनाना होगा। उसके उपरान्त ही तुम्हारा गुरूकुल में प्रवेश सम्भव हो सकेगा। गुरूकुल शिक्षा में तथा आधुनिक शिक्षा में एक बड़ा भेद शिक्षा के मूल उद्देश्य को लेकर है। गुरूकुल शिक्षा छात्र के सम्पूर्ण जीवन, उसके प्रकृति प्रदत्त तथा आत्मवत एवं भौतिक जीवन को लक्ष्य मानकर विकसित की गई थी। जबकि वर्तमान शिक्षा में ऐसा कुछ भी नहीं है। तीन तागों के यज्ञोपवीत से उसके जीवन को आत्मपरक, मानवीयता के प्रति समर्पित, प्राणी मात्र के प्रति समर्पित भक्ति के साथ ही शरीर को आत्मा एवं प्रकृति की पवित्र धरोहर मानकर,

निष्ठासहित जीवन की अदभुत कल्पना है। मनु की व्यवस्था का अनुपम उदाहरण है।

आधुनिक शिक्षा का यज्ञोपवीत यदि हम कल्पना करना चाहें तो कुछ ऐसा ही होगा। अच्छी नौकरी, बढ़िया तनखा और मोटी सी ऊपर की आमदनी (घूस)। अब हम शिक्षा में बालक को उसके होने के रहस्य कहां बता पाते हैं। उसे पर्यावरण तथा सचराचर के प्रति ज्ञानवान तथा कर्त्तव्य एवं धर्मनिष्ठ कहां बना पाते हैं। आप किसी घड़े को तभी भर सकते हैं, जब वह खाली हो। भरे घड़े भरना स्वयं में चमत्कार ही तो है। कोमल बाल्यावस्था में जब बालक खाली घड़े के समान है, तभी शिक्षा को सूत्र देकर उसके जीवन को अमृतमय बना सकते हैं। मनु ही इतनी गहरी सोच का स्वामी हो सकता है। उसके बाद शिक्षा पेट की रोटी, सुविधा भोगी आसक्त तथा स्वकेंद्रित संकीर्ण मानसिकता की पूर्ति का साधन भर बनकर रह गई।

आप जरा टटोलकर देखें ! आपके कन्धों के बीच में ऊपर की ओर आपका सिर है। कुदरत नें इसे यहीं पर स्थापित किया है। परन्तु क्या आप जानते हैं कि सिर महाशय सदा एक ही स्थान पर रहें, यह कतई आवश्यक नहीं है। यह अपना स्थान बदलते रहते हैं। जहां भी रहते हैं, सिर हैं तो सोचने का काम ही करते हैं। कुदरत ने इन्हें कन्धों के ऊपर लगाया है, वह इनका प्राकृतिक स्थान है। इसके अलावा यह कभी सरक कर पेट में उतर जाते हैं। यह इनकी दूसरी अवस्था है। कभी यह टहलते हुए पेट से भी नीचे सरक लेते हैं। यह इनकी तीसरी अवस्था है। और भी बहुत सी जगहें हैं जहां यह टहल लिया करते हैं। जहां भी रहते हैं, सोंचने का काम ही करते हैं।

जब यह महाशय कन्धों के ऊपर होते हैं, तो अपने होने के कारण खोजते हैं। जीवन के रहस्यों, सृष्टी की खोज, अनन्त सत्ता में मिलकर अनन्त हो जाने की प्रबल अभिलाषा आदि की खोज में लगे रहते हैं। यह इनका स्वभाविक सहज एवं सात्विक स्थान है।

जब यह महाशय पेट में सरक गये होते हैं तो सोच की दिशा पेट की रोटी, मैं और मेरों की अतृप्तियों की पूर्ति, अपनो के सुख के लिये लंकापति रावण सा जीवन खोज ही नहीं लेते, उसकी सार्थकता के हित में तर्क और प्रमाण भी घड़ लेते हैं। सिर जो ठहरे। तब शिक्षा भी उसी दिशा की पक्षधर हो जाती है। गलत ही सही लगने लगता है, सारी सोच की दिशा ही बदल जाती है। लोभ ही इनकी पूजा एवं भक्ति का स्थान ले लेती है।

जब यह महाशय पेट के नीचे के कुछ और नीचे सरक लेते हैं तो सोच की दिशा में कुछ नये निखार आने लगते हैं। विषय वासना और व्यभिचार उचित एवं तर्कसंगत लगने लगता है। लोभ, कपट, द्वेष, धोखा, व्यभिचार सब उचित धर्म संगत तथा व्यवहारिक लगने लगते हैं। सिर हैं, सोचना ही इनका काम है, सुन्दर तर्क, प्रमाण एवं साख्य खोजकर सबको उसी दिशा में बहा ले जाते हैं। सारा देश ही क्यों धीरे धीरे विश्व की दिशा भी बदल देते हैं। तब इनकी पूजा भी पंच मकारी तामसी हो उठती है।

मनु एक सुघड़ चिन्तक, अद्वितीय मनोवैज्ञानिक, सूक्ष्म दृष्टा तथा चतुर चितेरा है। वह मनुष्यमात्र के सिर की चपलता को गुरूकुल शिक्षा में इस प्रकार बांध देता है कि सिर स्वयं ही घुम्मकड़ी से घृणा करने लगता है। जीवन मूल्यों को जीवन से ऊपर प्रतिष्ठित करने लगता है। बाल्य अवस्था में ही उसके मन का खाली घड़ा आस्था और अमृतज्ञान से भरपूर हो उठता है। जीवन पर्यन्त ना तो घड़ा खाली होगा नाही कोई अन्यथा भर पायेगा उसे।

तीन तागों का यज्ञोपवीत गुरू उसे माला की तरह नहीं पहनाते। वे उसे गाण्डीव (धनुष अथवा कमान) की भांति धारण करवाते हैं। ऐसा क्यों ?

महाभारत युद्ध की कल्पना साकार करें। दोनो सेनाओं के बीच अर्जुन का रथ खड़ा है। श्रीकृष्ण उसके सारथि हैं। अर्जुन के हाथ में गाण्डीव है। युद्ध की घड़ी है। महाकवि वेदव्यास ने इसी चित्र को अथवा यूँ कहें इस

विश्वव्यापी सत्य घटना को उदाहरण स्वरूप ग्रहण करते हुये गुरूकुल के छात्रों को जीवन के सूक्ष्म रहस्यों से परिचित कराया है। इसका विस्तार हम यथा समय करेंगे। अभी संक्षेप में :– पांच तत्वों से बना शरीर पाण्डु, कुण्ठा से कुन्तल सा ज्ञान प्रदान करने वाली इसकी पत्नी कुन्ती अर्थात चेतना शक्ति, भौतिकताओं से परिचित कराने वाली माद्री, धर्मज्ञान युधिष्ठिर, संकल्पशक्ति भीम, लक्ष्य निर्णायक बुद्धि अर्जुन, ज्ञान नकुल तथा भक्ति सहदेव हैं। संज्ञा को ही द्रोपदी के रूप में दर्शाया गया है। संज्ञा की पांच तन्मात्राओं को पांच पुत्रों के रूप में दर्शाया गया है। एक सत्य ऐतिहासिक घटना को उदाहरण में लेकर प्रत्येक व्यक्ति को उसके जीवन दर्शन से परिचित कराना गुरूकुल शिक्षा की अनूठी प्रथा रही है। ऐसे कथानकों को ही लीला (नाटक) ग्रन्थ का सम्मान प्राप्त था। श्रीराम कथा भी एक ओर विशुद्ध इतिहास है, परन्तु लीला कथा के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की आत्मकहानी है। इनका विस्तार आप 'सरयु के तट' नामक ग्रन्थ में पायेंगे।

दस इन्द्रियों के द्वारा अर्जित ज्ञान बुद्धि ही अर्जुन है। शरीर रथ है। संस्कृत में शरीर को भी रथ कहते हैं। जीवात्मा ही बुद्धि रूप में अर्जुन है। शरीर रूपी रथ में जीवात्मा रूपी अर्जुन बैठा हुआ है। आत्मा, श्रीकृष्ण के रूप में सारथि है। आत्मा ही शरीर रूपी रथ को सांसो, धड़कनो तथा जीवन के क्षणों से वरद करता है। यज्ञोपवीत गाण्डीव है। मायाओं का महासमर महाभारत है। गायत्री मन्त्र उसका तरकश है। मन्त्र को स्पष्ट करें।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

अर्थ करें :– ॐ = अ् + उ् + म।

अ् =	अस्तित्व, तत्व सृष्टी, ब्रम्हा।
उ् =	उत्थान, उत्पत्ति, विष्णु।
म =	मृत्यु, मृत्युंज्य, महेश।

भूः = उत्पत्ति करने वाला।
भुवः = निरन्तर धारण करने वाला।
स्वः = आत्मा, शरीर में व्याप्त।
तत् = ऐसे।
सवितुः = सूर्य के सदृश्य ज्योतिर्मय। (का)
वरेण्यम् = वरण करता हूँ।
भर्गो = भरतार है, भरण करने वाला।
देवस्य = देवत्व अर्थात अमरत्व हेतु।
धीमहि = विवेक बुद्धि से वरद।
धियो = धारण, परिपूर्ण करने वाला।
यो = जो।
नः = हम सब को।
प्रचोदयात् = प्रकाशित, प्रेरित करने वाला।

ॐ अर्थात घट घट वासी ब्रम्हा, विष्णु, महेश रूपी आत्मा, जो हमको उत्पन्न करने वाले हैं। हमको प्रतिक्षण धारण करने वाले हैं, जड़त्व को ज्योतिर्मय अमर रश्मियों से युक्त कर अमरत्व प्रदान करने वाले हैं तथा जो बुद्धि को प्रदान एवं प्रकाशित करने वाले हैं। ऐसे सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा का हम वरण करते हैं। आत्मयज्ञार्थ; आत्मसेवार्थ; आत्मवत जीने का संकल्प करते हैं।

आत्मा की भांति ही प्राणी मात्र की निष्काम सेवा; जीवन के क्षणों एवं शरीर इन्द्रियों का आत्मयज्ञार्थ प्रयोग तथा आत्मा वासुदेव की प्राप्ति (आत्माद्वैत) हेतु जीवन का मात्र लक्ष्य धारण करते हैं।

श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है :— हे अर्जुन! ब्रम्हों में परंब्रम्ह; रूद्रों में शंकर; वैष्णवों में महाविष्णु, धनुर्धारियों में श्रीराम; प्रणवों में ॐ; छन्दों में गायत्री; एवं सम्पूर्ण भूत प्राणियों के हृदय में वास करने वाला अमर आत्मा मैं हूँ।

गुरूदेव बालक को उपदेश कर रहे हैं, ' बालक ! जीवन के दो मार्ग हैं। एक सकाम मार्ग है। जिसे धूम्र मार्ग कहते हैं। इसमें जीव संकल्पहीन निकृष्ट जीवन में स्वयं को स्वयं से अभिशप्त करता, पीढ़ाओं को संचित करता, पितृयान (चित्ताग्नि) द्वारा आवागमन को प्राप्त होता है। नर्क जीता, दूसरों को भी नर्क जिलाता, नर्क भटकने चल देता है।

दूसरा मार्ग शुक्ल मार्ग है, जिसका देव यान है। इस मार्ग का अनुसरण करने वाले योगीजन संकल्प सहित, उद्देश्य सहित, धर्मपूर्वक जीवन को आत्मयोग के अपूर्व सुख का अमृतपान करते, सबको अमृमय सुख प्रदान करते, आत्मज्वालाओं में नित्य स्नान करते देव (आत्मा) यान से अमर राह पर चल देते हैं। इनकी पीछे लौटकर आने की गति कदापि नहीं है। अमर आत्मा का नित्य संग इन्हें आत्मा के जैसा अमर बना देता है।

जीवन एक लम्बी यात्रा है। मानव की योनि क्षणिक ठहराव भर है। थोड़े समय के ठहराव के लिये कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सम्पूर्ण यात्रा का सर्वनाश तो नहीं करेगा ? तुम्हें सावधानी पूर्वक निर्णय लेना है। यज्ञोपवीत से संकल्पित मर्यादित लक्ष्यपरक जीवन पाने की उत्कट अभिलाषा ही तुम्हें गुरूकुल में प्रवेश दिलाने में सक्षम है। हे अनन्त यात्रा के पथिक ! गम्भीरता पूर्वक निर्भय होकर स्वतन्त्र भाव से निर्णय को प्राप्त हो।

बालक! तीन गर्भ हैं जिनसे तुझे गुजरना होता है। प्रथम गर्भ प्रकृति माता है, जहां मानव का शरीर सड़ी हुई खाद मिट्टी से वनस्पतियों के गर्भ द्वारा अन्नादिक में पवित्र होकर जन्म पाता है। दूसरा गर्भ है माता का, जहां से जीव शरीर में प्रवेश पाता मानव शिशु के रूप में जन्म धारण करता है। तीसरा गर्भ है पृथ्वी माया का, जहां जीव को अमर आत्मा से अद्वैत (एक होकर) योग एवं यज्ञ के द्वारा दूसरा जन्म धारण करता अपनी मूल सहज स्वरूप अवस्था को प्राप्त हो, क्षीर सागर में प्रवेश करे। तीसरा जन्म धारण करना ही मानव योनि की मात्र उपलब्धि है। इसी के लिये ही तुम्हें

संकल्प पूर्वक यज्ञोपवीत को धर्म पूर्वक धारण करना है, उसके उपरान्त ही तुम्हे गुरूकुल में शिक्षा हेतु प्रवेश की अनुमति प्रदान की जायेगी।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• द्विजन्मना जायते इति द्विजः

बालक ! जन्म से तुम शूद्र हो। ऐसा नियम सभी के लिये है। द्विजः संकल्प से ही तुम द्विज घोषित होगे। जब तक तुम इस संकल्प को विधिवत धारण नहीं करोगे तुम शूद्र ही कहलाओगे तथा ज्ञान के अधिकार से भी वंचित रहोगे। क्या तुम संकल्पित होना चाहते हो ? सावधान होकर उत्तर दो !'

बालक अपनी स्वीकृति देता है। वह शपथ पूर्वक दूसरे जन्म को लक्ष्य मानकर जीने की प्रतिज्ञा करता हैं। गुरू उसे तीन ऋण (कर्ज) के प्रति सचेत करते हैं, 'बालक ! तुम्हें तीन ऋण भी चुकाने होंगे। प्रथम है पितृ ऋण। प्रकृति ही सत्य रूप में तुम्हारी पितृ है। उसीने तुम्हें यह दुर्लभ मानव तन प्रदान किया है तथा प्रकृति ही निरन्तर तुम्हारे शरीर का भरण पोषण पांचों तत्वों तथा सभी प्रकार से करती है। माता पिता एवं सम्पूर्ण सचराचर का समर्पित भक्त एवं अर्पित सेवक बनकर ज़ीना ही तुम्हारा धर्म है। सचराचर की कृपा के ऋण से मुक्त होने के लिये तुम्हें सचराचर की निष्काम अनासक्त समर्पित सेवा का सतत् संकल्प लेना है। तभी तुम्हें गुरूकुल में प्रवेश प्राप्त होगा।

दूसरा आचार्य एवं गुरू का ऋण है। इसे तुम्हें श्रदा, आस्था, पूजा, हवन, यज्ञ, धर्म सम्मत, धर्म हेतु तथा धर्मपूर्वक जीकर पूरा करना होगा। जीव मात्र में ब्रम्ह का भाव, प्राणी मात्र की निष्काम सेवा, जीवन लक्ष्य के प्रति सदा सचेत रहकर, जीवन को अनन्त का यात्री मानकर, मानव योनि को क्षणिक ठहराव भर जानते हुए, गुरूकुल की सम्पूर्ण शिक्षा को ही जीवन बनाकर जीने से तुम आचार्य ऋण से मुक्त हो सकोगे। तुम्हें इसके हित में संकल्पित होना है। उसके उपरान्त ही तुम्हें गुरूकुल में प्रवेश की अनुमति होगी।

तीसरा देव ऋण है। देव (आत्मा) को सर्वस्व मानकर, आत्माद्वैत को ही जीवन का परम् लक्ष्य मानकर जीना होगा। शरीर को परमेश्वर का मन्दिर मानकर पुजारी की पवित्र भावनाओं के हित में ही शरीर का धर्म सम्मत सम्बन्ध एवं प्रयोग करना होगा। देवयान को ही जीवन का मात्र लक्ष्य बनाना होगा। वेद के पांच महावाक्यों को ही अर्पित होकर जीना होगा। वे पांच महावाक्य हैः–

१. तत्वमसि धारणा।
२. तेजोऽसि ध्यान।
३. एकोब्रम्ह द्वितीयोनास्ति – समाधि।
४. अहंब्रम्हास्मि यज्ञ।
५. सोहमस्मि योग। (इनका विस्तार बाद में प्रमाण एवं अर्थ सहित करेंगं)

इन्हें ही जीवन की राह बनाना होगा। देवऋण से उऋण (कर्जमुक्त) तभी हो पाओगे जब आत्मा से अद्वैत करते ब्रम्हाण्ड से ज्योति बन, अनन्त की राह सुखपूर्वक ग्रहण कर सकोगे। क्या तुम संकल्प पूर्वक इस मार्ग पर जाना चाहोगे ? क्या प्रतिज्ञा के लिये तत्पर हो ?

बालक संकल्पित होता है। सार्थक जीवन की अटल प्रतिज्ञाओं को धारण करता है। वह कहता है कि वह इसी शरीर में द्विज अर्थात दूसरे जन्म को प्राप्त होकर रहेगा। जीवन के बहुमूल्य क्षणों को भौतिकताओं को व्यर्थ कर निर्धनतम योनियों के भटकाव को कदापि प्राप्त नहीं होगा। जब शरीर और उससे जुड़ा आसक्त जगत एवं उपलब्धियां उसके साथ जा ही नहीं सकती तो वह बहुमूल्य जीवन के क्षणों को उनको पाने के हित में कदापि नष्ट नहीं होने देगा।

वह शरीर रूपी सामिग्री को आत्मा रूपी अग्नियों में तप एवं साधना द्वारा, मन प्राण सहित अर्पित करता, वाहय जगत को निष्काम सेवा एवं निमित्त

कर्म की पूजा में ही लेगा। विषयों, आसक्ति, लोलुपता आदि को जीवन में कोई स्थान नहीं देगा। वह निश्चय ही द्विज बनकर दिखायेगा।

गुरू तब उस बालक को द्विज घोषित करते हुए पुनः सचेत करते हैं, ' बालक द्विज धर्म के संकल्प के कारण ही हम तुम्हें द्विज घोषित कर रहे हैं, परन्तु ध्यान रहे, तुम अभी द्विज स्वरूप को खो भी सकते हो। द्विज हमने तुम्हे घोषित किया है। तुम द्विज हो, इसे तुम्हें सिद्ध करना है। यदि तुम अनन्त की राह का संकल्प पूरा नहीं कर पाये, मृत्यु को प्राप्त होकर पितृयान (चित्ता की राह, श्मशान) पर गमन कर गये, तो सारे संकल्प खण्डित होंगे। तुम पुनः शूद्र घोषित किये जाओगे। १२ दिन के शूद्रत्व (सूतक) में (जन्म काल के) एक दिन अधिक जुड़ जायेगा, तेरहवीं सूतक की मनायी जावेगी। यज्ञोपवीत तोड़ दिया जावेगा। टूट गये संकल्प जिसके, उसे यज्ञोपवीत का अधिकार कैसा? वह द्विज कैसा ? उसे पुनः शूद्र घोषित करो !

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाना चाहिये कि ज्योतिर्वेद तथा मनु ने एक जन्म अथवा एक शरीर भर जीवन को जीवन नहीं माना है। शरीर से जीव की उत्पत्ति को भी वे एक सिरे से अस्वीकार करते हैं। जीवन जीवात्मा से है तथा जीवात्मा का जन्म परमात्मा से है। ऐसी ही चर्चा श्रीमद्‌भगवतगीता में अति विस्तार से है। जीवन की खोज करने वाले विज्ञान ने इसे जानना भी नहीं चाहा है। विशेषकर चार्ल्स डारविन इससे कतई अनभिज्ञ दिखे हैं। उन्होंने इस सम्भावना की चर्चा तक नहीं की। आधुनिक विज्ञान आज भी शरीर को ही जीवन मानता हुआ, अपनी खोज को वहीं तक सीमित किये हुए है। क्षीरसागर (Space) को जीवन का विन्दु मानने को उत्सुक नहीं है। जबकि सूक्ष्म ब्रम्ह (Atoms) का धातु, तत्व (matter) में जुड़ना केवल क्षीरसागर में ही सम्भव है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि प्रत्येक सूक्ष्मब्रम्ह स्वयं में क्षीरसागर निहित किये रहता है तथा किसी भी तत्व में सूक्ष्मब्रम्ह जुड़ने की अवस्था में भी अपने चहुं ओर क्षीरसागर की अक्षुण व्यवस्था किये रहते हैं। सूक्ष्मब्रम्ह कभी भी आपस में जुड़ते नहीं हैं। जल की उत्पत्ति भी यज्ञ के द्वारा ही सम्भव है।

इसकी चर्चा श्रीमद्भगवतगीता में है।

दो मार्गों की चर्चा लगभग सभी प्राचीन धर्मों में है। मरने के बाद उसे स्वर्ग अथवा नर्क जाना होगा। जहन्नुम अथवा जन्नत नसीब होगी। हैल (Hell or heaven) अथवा हैविन जाना होगा। एक विचित्र साम्य है।

प्रश्न उठता है, किसको जाना होगा तथा वह कौन है जो जायेगा ? शरीर ? सवाल ही नहीं उठता। शरीर तो कहीं जायेगा नहीं। उसे तो धरती पर ही रहना होगा। दफन होगा, तब भी धरती पर ही रहेगा तथा जलने की अवस्था में भी उसे धरती पर ही रहना होगा। फिर जायेगा कौन ? यदि शरीर ही जीवन है तो उत्तर अति जटिल है। आधुनिक विश्व विज्ञान तो शरीर को जीवन मानकर इसके रहस्यों को जानने का प्रयास कर रहा है। यदि शरीर ही जीवन है तथा शरीर ही मनुष्य है तो स्वर्ग अथवा नर्क जायेगा कौन ? इस शरीर को यदि हम उसमें रहने वाले जीव अथवा जीवात्मा का घर मान लें, जीवन का सूत्र, जीवात्मा को पहना दें, तो निश्चय ही हमें अतीत के युगों की मान्यताओं के सूत्र स्पष्ट हो जायेंगे। तभी हम पुनर्जन्म की चर्चा के रहस्यों को भी स्पष्ट रूप से जान सकते हैं।

मनु तथा आदि ज्योतिर्वेद ने गुरूकुल की इन मान्यताओं को मानव समाज से क्यों इतनी कड़ाई से मनवाना चाहा ? व्यक्ति, उपरान्त जीवन में कभी भी इन मान्यताओं को भुला न दे, सदा सावधानी पूर्वक याद रखे तथा सदा नियम पूर्वक इनका भक्त बना रहे, इनके साथ ही मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को उन्होने अपनी व्याख्याओं बान्ध दिया है।

पैदा हुए तो सूतक, मरे तो चाण्डाल के घर की आग ? यज्ञोपवीत को हाथ में लेकर द्विजन्मना संकल्प लिया तो द्विज, अन्यथा जीवन पर्यन्त लज्जा ढोता – शूद्र !! लक्ष्य की सीमाओं में कसा बन्धा सम्पूर्ण जीवन, मिले तो आकाश सारा; लुटे तो अपयश की लज्जा, सिमटती नर्क में बनके मर्मान्तक पीढ़ा !!

सूरज की कहानी है मेरी, किरणों का परिचय भर ही दे रहा हूँ आपको। सूर्य का बेटा है मनु, संज्ञा उसकी माँ है। संज्ञाशून्य होकर नहीं पा सकते उसे। अपनी संज्ञा को जगाये रहें। मनु को आप ज्योतिर्वेद के सिद्धान्तसूत्रों द्वारा ही पहचान सकते हैं। चाहे स्वर्ग अथवा नर्क की चर्चा ही क्यों न हो। एक पूर्व चर्चित सूत्र में देखें। कैसे दिखते हैं स्वर्ग और नर्क ?

- **यत् पिण्डे ! तत् ब्रम्हाण्डे !**
- **जो मैं हूँ ! सो ही सचराचर सारा !**

'स्व् + अर्ग – स्वर्ग।' स्व का अर्थ है आत्मा तथा अर्ग का अर्थ है सीमा। अर्ग से ही अर्गला (कुण्डी,सांकल) सीमित होना अथवा बन्ध जाना। स्वर्ग जो ऊपर अनन्त की राह में है, वही सूक्ष्म होकर समाया हुआ है मुझमें। बन्ध गया जो अपनी आत्मा अनन्त के साथ, उसने जीया स्वर्ग, इस मानव तन में, उसने ही पाया स्वर्ग अनन्त होकर !

अब देखें नर्क ! 'न् + अर्क = नर्क।' न का अर्थ है नहीं। नकारता है जो अर्क अर्थात सूर्य, आत्मा को। आत्मा को नकार कर जो जी रहा विषयान्ध भ्रमित जिन्दगी; वह जीता पीढ़ा और चिन्ताओं के नर्क ! इस जीवन के उपरान्त उपलब्धि में पाता नर्क़ !

यज्ञोपवीत में सात गांठे हैं। सप्त वासनाओं से रहित, सप्त देवों (सप्त ऋषियों) की साक्षी में, सप्त संकल्पों सहित बालक गुरूकुल में प्रवेश ग्रहण करता है। जीवन को प्रकृति तथा अमर आत्मा की पवित्रा धरोहर मानकर जीवन के रहस्यों का निसन्देह ज्ञान, भौतिक जीवन में सत्यनिष्ठ कर्मयोगी के आर्दश, प्रणीमात्रा में आत्म समर्पित सेवा एवं सहयोग, आत्माद्वैत और अनन्त की राह का सफल कुशल यात्री बनने चल दिया है।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• ज्योतिष और गुरूकुल !

आधुनिक विज्ञान, ग्रहों की माया के जिन प्रभावों के विषय में अब खोजने के प्रयास में जुट पाया है, गुरूकुल में बालक को आरम्भ में ही इस महाविज्ञान में परिचित होना अनिवार्य है। माया (Gravity) की व्याख्या का अनूठा दर्शन हमें गुरूकुल शिक्षा में तथा सिद्धान्त सूत्रों में मिलता है।

दो ध्रुवों (Poles) के मध्य का गुरूत्वाकर्षण माया है।

माया जीव की उत्पत्ति, स्थायित्व तथा मृत्यु को प्रभावित करती है। माया जीवन है तथा माया ही मृत्यु का मूल कारण है। माया जीवन पहेली के रहस्यों को खोलने की मास्टर कुन्जी (Master key) है। दो ध्रुवों के मध्य का आकर्षण एवं विकर्षण ही माया कहलाता है। ये ध्रुव, दो व्यक्ति, पति पत्नि, स्त्री अथवा पुरूष, दो मित्र, दो ग्रह, दो विचार अथवा दो विषय भी हो सकते हैं। माया दो ध्रुवों तक ही सीमित रहे, ऐसा सदा आवश्यक नहीं है। माया दो से अधिक असंख्य ध्रुवों के बहुकोणीय स्वरूप में भी अभिव्यक्त होती है। जीव माया के हाथों में कठपुतली भर है।

गुरूत्वाकर्षण, आसक्ति, प्रेम, सम्मोहन, क्रोध, प्रतिशोध, द्वेष, लोभ, मोह, घृणा, राग, चिन्ता, दम्भ, मिथ्याभिमान, धोखा, विश्वासघात, छल कपट आदि असंख्य रूप माया के हैं। इन्हें माया के अस्त्र अथवा प्रभावक्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया है। संस्कृत भाषा में मानव मन की एक संज्ञा इन्द्र भी है। मन इन्द्र की सभा में उपरोक्त प्रभावक्षेत्रों को अप्सराओं के रूप में दर्शाया गया है। माया को विभिन्न सूक्ष्म तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर तक गुरूकुल शिक्षा केवल स्पष्ट ही नहीं करती वरन उसके उपचार के लक्ष्य को अति महत्व प्रदान करती है। उच्च मनोवैज्ञानिक स्तर पर छात्र के जीवन को माया से मुक्त रखने का विस्मयकारी प्रयास हमें गुरूकुल शिक्षा में मिलता है।

पृथ्वी पर ग्रहों की माया के विभिन्न प्रभावों को नापने का अदभुत ज्ञान ही ज्योतिष शास्त्र के रूप में गुरूकुल में पढ़ाया जाता रहा है। समय का सही आंकलन, तिथि, माह, संवत, वार (दिन), पक्ष, मनु तथा ब्रम्ह की अवस्था का भान छात्र इसी महाविज्ञान में पाते थे। समय को ग्रहों की परिक्रमाओं से परिभाषित करने का महाविज्ञान भी गुरूकुल शिक्षा की देन है। आधुनिक विज्ञान आज भी इसका विकल्प नहीं खोज पाया है।

पृथ्वी पर समय के विश्वव्यापी स्वरूप को स्थापित करने के लिये इस ग्रह की परिक्रमा को आधार बनाया गया। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। कोई भी वृत ३६० अंश का ही होता है। पृथ्वी की परिक्रमा के एक अंश को एक तिथि की संज्ञा प्रदान की गई। ३६० अंश को संवतसर की संज्ञा प्रदान की गई। इनके १२ विभाग किये गये, जिनको माह अथवा मास कहा गया। १२ मास का एक वर्ष अर्थात संवतसर कहाया। परिक्रमा के अतिरिक्त पृथ्वी अपनी धुरी पर गोलाकार नाचती है। इसे अहोरात्र अर्थात दिन एवं रात्रि की संज्ञा प्रदान की गई। धुरी भ्रमण को ६० भागों में विभक्त किया गया जिसे ६० घड़ी कहा गया। २.५ घड़ी आधुनिक एक घन्टे के बराबर होती है। ६० घड़ी बराबर २४ घन्टे।
छात्र को उसके सही समय का ज्ञान कराने की पद्धति के रूप में १२ मास को ही १२ राशियों में ढाला गया तथा संवतसर ही जन्म चक्र बना। १२ मास का एक संवतसर तो १२ राशि का जन्म चक्र। सभी ग्रहों को, जो पृथ्वी की भांति ही सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं तथा जिनका मानव जीवन पर व्यापक प्रभाव स्पष्ट रूप से पढ़ता है; उन्हें राशियों में दर्शाने की विद्या को जन्म कुण्डली संज्ञा प्रदान की गई।

ग्रहों को गगन में सही ढंग से पढ़ पाना आसान करने के लिये पृथ्वी के चहुं ओर दृश्य आकाश को २७ नक्षत्र समूहों में बांटा गया। प्रत्येक नक्षत्र समूह के ४ भाग किये गये, जिन्हें यथा नक्षत्र चरण की संज्ञा प्रदान की गई। इस प्रकार २७ नक्षत्र समूह पुनः विभक्त होकर १०८ चरण हुए। पूजा की माला के भी १०८ मनके होते हैं। सारा आकाश, पूरी परिक्रमा १०८ चरणों पूर्ण होती है।

इसे एक लघु उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। किसी ने आपसे किसी व्यक्ति के विषय में जानकारी चाही। पूछा, अमुक व्यक्ति कहां पर है ? आप बतायेंगे अमुक मार्ग पर, अमुक नाम चौराहे के पास, अमुक नामधारी दुकान के बगल वाले घर में ठहरा है। ठीक इसी प्रकार अनन्त अस्सीम आकाश में किसी भी दिखते हुए ग्रह की स्थिति बता पाना सम्भव करने के लिये ही उपरोक्त विभाग किये गये। अमुक ग्रह इस समय अमुक नक्षत्र के अमुक चरण में मार्गी अथवा वक्री, उदय अथवा अस्त अवस्था में है।

जिस प्रकार पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं, उसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, जिससे कृष्ण और शुक्ल पक्ष बनते हैं। जिन्हें साधारण भाषा में अन्धेरे और उजाले पक्ष कहा जाता है। इसी प्रकार उत्तर गोल तथा दक्षिण गोल सूर्य के माने गये हैं। छह (६) माह का एक गोल तथा दो गोल का एक संवतसर अथवा वर्ष कहलाते हैं।

पृथ्वी के भी भौगोलिक रूप से विभाग किये गये। जिससे प्रत्येक स्थान पर सभी समय में ग्रहों के सही प्रभाव को जन्म कुण्डली में अंकित कर सके। इन्हें उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम बांटा गया, जिससे किसी भी स्थान पर जन्मने वाले जातक को सही प्रभाव सहित अंकित किया जा सके। गुरूकुल शिक्षा को आरम्भ हुये असंख्य लाख वर्ष बीत जाने के बाद भी ये पद्धतियां तथा गणनायें यथावत निरन्तर हैं। किसी भी समय काल अथवा परिस्थितियों में अक्षुण तथा अप्रभावित रही हैं। यह स्वयं में आश्चर्यजनक है।

उससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य आपके सामने रखना चाहुंगा। दिल्ली में एक मार्ग है, जिसका नाम है, कोपरनिकस मार्ग। आज से सम्भवतः ३०० अथवा ५०० वर्ष पूर्व इस विद्वान ने पहली बार विश्व को बताया था कि पृथ्वी सूरज की परिक्रमा करती है। तब तक लोग यही समझते थे कि सूरज ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। हम सबको भारत सरकार और राष्ट्रीय नेताओं की समझदारी पर गर्व होना ही चाहिये।

इस विद्वान ने यह भी सिद्ध किया था कि सूर्य स्थिर है। जबकि आदिकाल से गुरूकुल के वैज्ञानिक ऋषि मानते आये हैं कि सूर्य अपने ग्रह परिवार के साथ देवलोक की परिक्रमा को प्राप्त है। सूर्य की एक परिक्रमा पृथ्वी की ४३,२०,००० वर्ष के बराबर है। यह सूर्य का एक वर्ष है। जिस महालोक की परक्रिमा सूर्यदेव करते हैं वह भी ब्रम्ह की परिक्रमा कर रहा है। इसे श्रीमद्‌भगवतगीता में भी स्पष्ट रूप से इस तथ्य को दर्शाया गया है। विश्व का आधुनिक विज्ञान भी इसे अब मानने लगा है। इसका विस्तार यथा समय सप्रमाण करेंगे।

असंक्ष्य लाखों वर्ष पूर्व मानव ने ज्योतिष के माध्यम से स्वयं को अन्तरिक्ष में ससम्मान स्थापित कर लिया था। अन्तरिक्ष की परिक्रमाओं के रहस्यों की समझ ही नहीं, वरन उनमें अधिकार सहित स्वयं को प्रतिष्ठित कर लिया था। उसकी गणनाओं में ग्रह नक्षत्र एवं सम्पूर्ण सचराचर व्याप्त था। भले ही उसके पास कागज और छापाखाने नहीं थे, फिर भी प्रत्येक क्षण को सही संजोने की कला में वह पारंगत था। उसके इतिहास और समय अन्तर्ब्रम्हाण्डीय थे। एक नवजात शिशु से आकाशगंगाओं का प्रत्येक क्षण अक्षरशः सही अंकित करने की विलक्षण प्रतिभा उसमें थी।

गगन का एक निर्मल छोटा सा स्निग्ध सितारा धरती पर उतर आया है, एक मनोरम नवजात शिशु के रूप में। ज्योतिषी ने उस क्षण को सदा के लिये संजोने हेतु उसकी जन्मकुण्डली बना दी है। अमुक रेखाशं अक्षाशं पर अमुक नाम स्थान पर, अमुक लग्न, चन्द्र राशि, सूर्य बुध मंगल शुक्र शनि राहु केतु की अमुक स्थिति में अमुक व्यक्ति के घर अमुक नक्षत्र चरण में बालक का जन्म हुआ। हजारों साल बाद भी आप सही समय, स्थान एवं परिवार के विषय में भ्रमित नहीं हो सकते। एक ऐसी सनद जो ब्रम्हा की भांति अटल है। उसे झुठलाया नहीं जा सकता। सबकुछ इतना विस्मयकारी है कि सहज विश्वास ही नही होता।

पाश्चात्य वैज्ञानिक तो पत्थरयुग और लौहयुग की बात करते हैं। अतीत के मानव को असभ्य, जंगली, हिंसक बताते हैं। क्या सत्य के विलोम भी

सत्य हो सकते हैं ? कहां खो गये वे ज्योतिर्मय लोग और वे जगमगाते क्षण ! क्या लौटेंगे फिर वे युग कभी ? कहते हैं इतिहास अपने को दुहराता है। कब ? कैसे !! पता नहीं !

महर्षि पराशर ने काल पुरूष से महादशायें प्रकट की हैं। समुद्र ऋषि ने हस्त और ललाट पर लिखे भाग्य को भोजपत्रों पर अंकित श्लोकों के पाठ सा सरल बना दिया है। गौतम अन्तर्चक्षु के विज्ञान को छात्रों तक लाये हैं तो लोमश का रमल अदभुत है। गुरूकुल अमृतमय ज्योतिर्विज्ञान का क्षेत्र है। गगन की अनन्त दूरियों सा विशाल और व्यापक !

गुरूकुल शिक्षा का मूल सूत्र छात्र का सम्पूर्ण जीवन ही नहीं उसकी अनन्त यात्रा का सम्पूर्ण ज्ञान है। आधुनिक शिक्षा उसे उसका परिचय भी नहीं दे पाती। वह कौन है, क्यों है, कहां जायेगा वह मरने के उपरान्त, कौन है जो उसे जड़त्त्व से मानव योनि में लाता है ? क्यों लाता है ? क्यों बनकर आत्मा उसके जूठे भोजन को शबरी का प्यार देता, उसके जीवन को निरन्तर एवं सुखद बनाता है ? नहीं !! अब शिक्षा का इन सूत्रों से कुछ लेना देना नहीं है। अच्छी नौकरी के लिये, बड़े पद के लिये, सुविधाओं की तथाकथित उपलब्धि के हित में, ही शिक्षा के सूत्र हैं। कुत्ते के पिल्ले बिना पढ़े भी सुखपूर्वक जी लेंगे, परन्तु मानव का......? कितना बौना हो गया है आदमी ! भयभीत, अपनी परछाईयों से दहला, केवल जीने भर के लिये ही जीना चाहता है। जीवन के बहुमूल्य क्षणों से परिचित होने में उसकी रूचि नहीं है। जीवन के बहुमूल्य क्षणों को बस जीकर बरबाद कर देना भर ही है। इससे आगे न तो शिक्षा और ना ही शिक्षाविद ही सोचना चाहेगा। जीना केवल मरने के लिये ही होता है। बस इसके आगे और कुछ भी नहीं। कुत्ते का पिल्ला निर्भय जीयेगा, परन्तु मानव का सदा भयभीत डरा सहमा हुआ, कल की आशंका में, आज सशंकित ! विडम्बना यह भी है कि कल हम असभ्य थे, और आज हम सभ्य समझदार हैं।

ज्योतिष में पूर्ण पारंगत गुरूकुल के आचार्य प्रत्येक बालक के जन्म पत्र

के अनुरूप उसके व्यक्तित्व तथा मानसिकता एवं बुद्धिबल के विकास के लिये कार्यक्रम बनाते हैं। आज की तरह 'सब धान एक पसेरी' नहीं करते। आचार्य मानव विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, धर्म, सामान्य एवं समाज विज्ञान के चतुर ज्ञाता हैं। जीवन में आने वाली विसंगतियों से तथा उनके यथा उपचार से भली भांति परिचित हैं। वे धर्मपूर्वक बालक के सम्पूर्ण जीवन को व्यवस्थित करेंगे। सम्पूर्ण शिक्षा को इसप्रकार ढालकर दिया जायेगा कि गुरूकुल से बाहर होने के उपरान्त भी छात्र नियमपूर्वक प्रतिदिन, प्रतिक्षण शिक्षा को धर्म पूर्वक आस्था सहित दुहराता रहेगा। आरम्भ को उदाहरण में लेते हैं।

आपने बच्चों को आरम्भ की कक्षाओं में स्कूल में पढ़ते देखा होगा। कल्पना को साकार करें। प्रतीकों के माध्यम से अक्षर ज्ञान करते नन्हें धरती के सितारों को अपनी कल्पनाओं में उतारें। 'कबूतर से....क', खरगोश से.......ख' आदि। गुरूकुल में भी आचार्य इसी पद्धति का प्रयोग करते हैं, थोड़े अन्तर से। वे छात्रों को गुरूकुल के मन्दिर में लाते हैं। यहीं से शिक्षा सत्र का आरम्भ है।

मन्दिर बालक का प्रतिरूप है। बालक मन्दिर से स्वयं को जानने का प्रथम अध्याय गुरूकुल में पढ़ते हैं। अभी तक तो वे इतना ही जानते हैं कि यह भगवान का मन्दिर है। परम पवित्र धाम है। यहां नहाकर, स्वच्छ एवं निर्मल मन से आस्था पूर्वक, प्रभु के दर्शन कृपा के लिये भक्त जन, पूजा अर्चना हेतु पधारते हैं। आज आचार्य उन्हें पढ़ाने के लिये लाये हैं। बालक उत्सुक हैं। भला ऐसा क्या है जो वे नहीं जानते ? गांव के मन्दिर में वे नित्य जाते रहे हैं। कथा सत्संग एवं प्रसाद नित्य पाते रहे हैं। सबकुछ वे जानते हैं। फिर मन्दिर में क्या पढ़ायेंगे गुरूदेव ? भोली उत्सुकता के साथ, स्वच्छ एवं निर्मल होकर ब्रम्ह मुहूर्त में बालक मन्दिर में एकत्र हैं। गुरूकुल में उनकी शिक्षा का प्रथम दिन है।

आचार्य उपदेश कर रहे हैं, ' देखो बालको ! यह पवित्र मन्दिर भगवान का स्थान है। इसका स्वरूप तुम्हारे शरीर के जैसा है। जब तुम पूजा में

पाल्थी लगाकर, घुटनो को मोड़कर, आसन की मुद्रा में बैठते हो, उसी के समान मन्दिर का चबूतरा बनाते हैं। जैसे कोई स्वस्थ आसन में बैठा हुआ है। फिर उसके ऊपर शरीर के जैसा ही मन्दिर का गोल कमरा बनाते हैं। मन्दिर का कमरा धड़ के समान है। सिर के जैसा गुम्बद मन्दिर के ऊपर लगा देते हैं। सिर के ऊपर जटाओं का जूड़ा है। इसका ही प्रतीक गुम्बद के ऊपर का कलश है। जटाओं के जूड़े सा कलश है। मन्दिर की संरचना तुम्हें तुम्हारा स्वरूप पढाने के लिये ही विशेषकर है। पाल्थी के जैसा चबूतरा, धड़ के जैसा मन्दिर का कमरा, सिर के जैसा गुम्बद, जटाओं के जूड़े सा कलश है। मन्दिर हमें शिक्षा प्रदान करता है कि हमारे शरीर भी परमेश्वर के बनाये हुए पवित्र मन्दिर हैं। हमारा धर्म है कि हम अपने शरीर को भगवान का मन्दिर ही माने। इसे कभी भी अपवित्र न करें। सदा भगवान के मन्दिर सा सम्मान दें।
शरीर को आत्मा का तीर्थ बनावें।
अब मन्दिर के भीतर चलें। भगवान की सुन्दर मनोहर मूर्ति विराजमान है। विशाल सम्मोहित करते नेत्र, खिलते कमल के जैसे अधर, सुन्दर कपोल, नयनाभिराम छवि ! अगं अगं मनोहर छटा, कितनी मनोहर झांकी है। ऐसे ही सुन्दर भगवान आत्मा के रूप में तुम्हारे शरीर में विराजमान हैं। मूर्ति आत्मा का प्रतीक है। आत्मा ही शरीर को जीवन्त करता है। आत्मा ही शरीर का भरण पोषण करता है। आत्मा ही शरीर की हर ओर से रक्षा करता है। आत्मा ही परमात्मा का लीलावतार है। मूर्ति में अपनी आत्मा का दर्शन करो। स्वयं को पढ़ो।

देखो मन्दिर में पुजारी जी भगवान की सेवा में लगे हैं। जीव अथवा जीवात्मा ही प्रत्येक शरीर में पुजारी है। हम सब जीवात्मा हैं। परमात्मा के द्वारा बनाये हुए हैं। हम सब एक सत्ता से उत्पन्न हैं।
एक पिता परमात्मा की संतान हैं। जीव ही हमारी संज्ञा है।'

मन्दिर से बालक अपना परिचय पाते हैं। आचार्य विस्तार से उन्हें मन्दिर, मूर्ति तथा पुजारी के माध्यम से बालकों को उनका अपना प्रथम दर्शन कराते हैं। पूजा अर्चना के विषय में विस्तार से ज्ञान तथा कर्मकाण्ड का

उपदेश करते हैं। उन्हें नित्य पूजा तथा त्रिकाल गायत्री का सम्पूर्ण विधान कण्ठस्थ कराते हैं। कर्मकाण्ड के रहस्यों से उनको कारण तथा तर्कसहित परिचित कराते हैं।

आस्था के कई रूप होते हैं। अन्ध आस्था से भी बालक पूजा पाठ श्रद्धा पूर्वक करेगा। गुरू के आदेश के अनुरूप ही आचरण करेगा। परन्तु इस ज्ञान को केवल वस्त्र की भांति ही ओढ़ेगा। वस्त्र को कभी भी उतार कर दूसरा वस्त्र धारण करते ही हैं लोग। इस ज्ञान का क्या औचित्य ? अनुभवसिद्ध आत्मसात, तर्क एवं सन्देहों के निराकरण के उपरान्त उपजी आस्था, नित्य अमर आत्मा के सदृश्य ही अमर होकर बालक का सम्पूर्ण जीवन बन जाती है। उसके जीवन को नित्य संस्कारित करने लगती है। इसे उदाहरण सहित स्पष्ट करते हैं। बालक मन्दिर का पाठ पढ़ चुके हैं। अब आचार्य उनसे प्रश्न करते हैं तथा उन्हें दिशा भी प्रदान करते हैं।

आचार्य प्रश्न करते हैं, 'बालको क्या पुजारी मन्दिर का मालिक हो सकता है ?'
'कदापि नहीं आचार्य ! वह एक निमित्त सेवक भक्त ही हो सकता है। मन्दिर का स्वामित्व मूर्ति के द्वारा परमेश्वर का ही है।'
' ठीक इसी प्रकार हमारे शरीर का स्वामित्व, आत्मा के द्वारा परमेश्वर को ही प्राप्त है। वे ही हम सबके शरीर रूपी मन्दिरों के मात्र स्वामी हैं। हमें अपने शरीर का प्रयोग सदा पुजारी की भावना से करना चाहिये। मन्दिर और मूर्ति की स्थापना भक्त समाज करता है। परन्तु शरीर की सृष्टि केवल आत्मा द्वारा ही सम्भव है। माता अथवा पिता के शरीर निमित्त बर्त्तनों की भांति हैं। वे तो अपने ही शरीर का अगं बनाने में समर्थ नहीं हैं। शरीर आत्मा की पवित्र धरोहर है। इसे किसी प्रकार से भी गन्दा नहीं करना। इसके साथ ही हमें इस सत्य को भी सदा याद रखना है कि जब शरीर में हम मात्र निमित्त पुजारी हैं, मकान मालिक, दुकान मालिक अथवा स्त्री और सन्तान मालिक कैसे हो सकते हैं ? सदा आत्मा को ही सत्य मानते हुए, निमित्त पुजारी की भावना से ही भौतिक जीवन को वहन करना।' आचार्य स्वयं निर्णय नहीं लेते बालकों को सोचकर निणर्य लेने

का अवसर प्रदान करते हैं। पुनः आचार्य बालकों से जिज्ञासा करते हैं, जिसप्रकार पुजारी मूर्ति को भोग लगाता है, उसी प्रकार हमने भी भोजन आत्मा मूर्ति को ही तो अर्पित किया है। भोजन को रक्त, शक्ति में प्रकट करने वाला मात्र आत्मा है। जो वस्तु भोजन के रूप में हम मूर्ति पर नहीं चढ़ा सकते उसे साक्षात आत्मा को अर्पित करना क्या उचित होगा ?' बालक सोचकर उत्तर देते हैं कि ऐसा करना सर्वथा अनुचित एवं पाप होगा।

थोपा गया निर्णय, ओड़े हुए वस्त्र की भांति है। बालक उसे कहीं भी सुविधा के हित में उतार सकता है। परन्तु स्व अर्जित निर्णय भुजाओं की भांति अति मूल्यवान होता है। उसे अलग करने की कल्पना भी नहीं कर सकते। आधुनिक शिक्षा में इस विचार को कोई महत्त्व ही नहीं दिया गया है।

हमारी इन्द्रियां मन्दिर की मूर्ति के आभूषणों के समान हैं। इन्हें आत्मा ने बनाया है। जिस प्रकार पुजारी मूर्ति के गहने चुराकर बेच नहीं सकता, उसी प्रकार हम भी इनका विषयों के वशीभूत दुरूपयोग कैसे कर सकते हैं।

आत्मा जीवमात्र के शरीरों में अभेद भाव से व्याप्त है। आत्मा किसी से भेद नहीं करता। जो आत्मा की भांति अभेद नहीं वह धर्मात्मा (धर्म + आत्मा) कैसा ? आत्मा बनके शबरी का राम, जीव मात्र की जूठन को रक्त में बदलता है।

आत्मा ही सचराचर का निर्माता, धारक, पोषक, रक्षक, दाता और विधाता है। किससे कितनी फीस लेता है अपनी इन सेवाओं की ? जब सचरावर का स्वामी निष्काम सेवाओं में निरन्तर जीव मात्र की सेवा में लगा हुआ है तो हमारा भी उचित धर्म क्या होना चाहिये ? निष्काम सेवा अथवा मतलब परस्ती, सकाम लोलुप मनोवृति ? बालक गम्भीर चिन्तन मन्थन के उपरान्त निर्णय लेते हैं। आचार्य केवल सही निर्णय लेने में उनका

सहयोग भर करते हैं।

बालक अब नित्य प्रति नियम पूर्वक मन्दिर में सुबह सायं, सेवा, आराधना, पूजा के साथ ही पाठ को को दुहराने के लिये अनिवार्य रूप से जायेंगे। मन्दिर उनके शरीर का प्रतिरूप है। मूर्ति साक्षात उनकी आत्मा की तस्वीर है। आत्मा ही उनका सर्वस्व है। आत्मा के द्वारा ही उन्होने दुर्लभ मानव का रूप पाया है। आत्मा के बिना उनका अस्तित्व मुट्ठी भर राख बनकर रह जायेगा। न माता न पिता, न ही को भाई, बंन्धु बान्धव अथवा मित्र सखा ! आत्मा है तो सबकुछ है। आत्मा नहीं तो कुछ भी नहीं। उसके कोमल अबोध मन पर आत्मा का वर्चस्व कायम हो चुका है। मन का एकदम खाली घड़ा आत्मा के अमर पवित्र रगं में सदा के लिये रंग गया है। गायत्री मन्त्र उसके जीवन का इकलौता मार्ग बन चुका है। उसका पूजा का नियम केवल गुरूकुल तक ही सीमित नहीं रहेगा वरन उसके सम्पूर्ण जीवन का अटल नियम बन जायेगा। यज्ञोपवीत उसके जीवन को कभी भी किसी अवस्था में भी जीवन लक्ष्य से भटकने नहीं देगा। मनु एक चतुर चितेरा और विश्व का सर्वोत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक है। बालक के चित्त को रंगना उसे भली भांति आता है। बालक, समाज, परिवार, सचराचर का अमृत बनकर ही जीयेगा। साथ ही उसका जीवन परम सुखद तथा उद्देश्यपरक सदा रहेगा। इससे समाज व्यवस्थित आत्मपरक तथा उच्च मूल्यों के साथ आकाश को भी अपने में समाये रहेगा। मानवीय मूल्यों का कभी अनादर नहीं होगा। काश ! आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों ने भी इस दिशा में सोचा होता ! मनुष्य और उनका समाज कानून से कितना व्यवस्थित होता है, हम सब जानते हैं। मन से बंधी कानून और व्यवस्थायें कभी भी आदर नहीं पाती। मनुष्य उनसे बचने के रास्ते ही खोजता है। आत्मा से बंधे कानून और व्यवस्थाओं को वह आदर सहित मानता तो है ही, मानकर अति प्रसन्न भी होता है। सरकारी टैक्स से हर कोई बचना चाहता है। परन्तु आत्मा और धर्म के नाम पर भारी दान देकर अस्सीम सुख की अनुभूति करता है। जबकि दोनो टैक्स ही हैं।

गुरूकुल की पहली कक्षा को बालक जीवन भर पढ़ेगा। मन्दिर का नियम उसके जीवन का अभिन्न अंग सदा के लिये हो जायेगा। क्या आपको पहली कक्षा की किताब याद है ? नहीं !! जी हां ! यही दोनो शिक्षा प्रणालियों का भेद है। कल की शिक्षा का मूल सूत्र छात्र का सम्पूर्ण जीवन, लक्ष्यपरक हैं। आधुनिक शिक्षा में अच्छी नौकरी, मोटा वेतन और कुछ.....!!!

अतीत के युगों में दो नाम सदा चर्चा में रहे हैं। एक मनु जिनसे उनके अनुयायी मानव कहलाये। दूसरे दनु, जिनके अनुयायी दानव कहलाये। क्या हम जानना नहीं चाहेंगे कि इनमें हम कौन हैं ? मानव अथवा दानव अथवा इन दोनो के बीच की खिचड़ी के अजूबे ?

पृथ्वी को हम वसुन्धरा कहते हैं। यदि पृथ्वी का उर्वरक भाव किसी विपदा के कारण नष्ट हो जाये तो यह बन्जर हो जाती है। वसुन्धरा नहीं रहती। उर्वरक अवस्था को पुनः पाने में युग बीत जाते हैं। यही अवस्था धर्म और मानवीय संस्कृति की है। हम अपनी भावी पीढ़ियों को विरासत में क्या देकर जा रहे हैं ? एक वसुन्धरा संस्कृति अथवा एक ऐसी बन्जर संस्कृति जहां..........?

गुरूकुल में आरम्भिक शिक्षा में ही छात्र ज्योतिर्वेद से जुड़ने लगते हैं। उन्हें नाना प्रकार से इस महाविज्ञान से जोड़ने के सार्थक प्रयास आरम्भ से किये जाते हैं। मन्दिर भी इससे अछूते नहीं हैं। बालक जानना चाहते हैं कि मन्दिर में देवों की परिक्रमा के विधान क्यों हैं ? आचार्य बताते हैं कि परिक्रमा ही जीवन का मूल है। परिक्रमा के कारण ही धरती पर जीवन है। परिक्रमा के कारण ही पृथ्वी का स्थायित्व है। जो भी ग्रह परिक्रमाओं से हीन होने की अवस्था में आता है, उसका पतन होने लगता है। वह अन्य ग्रहों के साथ अपनी मायाओं का सन्तुलन खोने लगता है। धीरे धीरे वह ग्रह असन्तुलित होता धूम्रकेतु बन महाविनाश की राह पकड़ लेता है। समय के साथ उस धूम्रकेतु का पूरा अरितत्व सूक्ष्म बिन्दुओं में विलीन हो जाता है। वे सूक्ष्म बिन्दु पुनः नूतन सृष्टी को प्राप्त होते नये

ग्रहों की सृष्टी करने लगते हैं। इसी को आवागमन कहते हैं। इसे ही श्रीमदभगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया है। यह सकाम मार्ग है, धूम्र मार्ग है, जिसका पितृयान है, तथा इसमे बारम्बार पीछे आने की गति है।

पृथ्वी ही क्यों, सम्पूर्ण सचराचर परिक्रमाओं द्वारा ही जीवन के स्थायित्व को प्राप्त होता है। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, गुरू, शुक्र, शनि आदि सारे ग्रह परिक्रमाओं को प्राप्त हैं।

- **आब्रम्हभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**
- **मामुपेत्यतुकौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।**

हे अर्जुन! ब्रम्हलोक से लेकर देवलोक तथा ग्रह सारे, पुनर्परिक्रमाओं को प्राप्त होते जैसे (उसी प्रकार हैं मन इन्द्रियां और विषय सम्पूर्ण)। मुझको (आत्मा) प्राप्त हो, हे कुन्ती पुत्र ! फिर जन्म न हो तेरा। अनन्त हो जाये तू !

ग्रहों की अवस्था, उनके सृजन प्रलय आदि का सम्मुन्नत ज्ञान, उनके गुरूत्वाकर्षण के जीवन पर पड़ते नाना प्रभावों का व्यवस्थित आंकलन अत्याधिक विस्मयकारी है। मनु आरम्भिक शिक्षा में ज्योतिर्वेद को एक गहरे संस्कार के रूप में छात्रों को जानबूझकर देना चाहते हैं। मन के खाली घड़ों को ज्योतिर्वेद से सींचना चाहते हैं। ऐसा क्यों ? मनु की तड़प धरती पर बिछुड़ गये अपने जीवों की है। जो धरा पर एक अनुसंधान के रूप में उतारे गये थे। जैसे सागर में उतरते हैं गोताखोर ! लौटना था उनको क्षीरसागर में ! त्रासदी में फंसकर रह गये थे वे सब। कहीं भूल न जायें, दिशाहीन न हो जायें ! क्या यही तड़प नहीं है, मनु की शिक्षा में ? मनु हमें सदा याद दिलाना चाहते हैं। इसलिये संस्कारों को भी ग्रहों की भांति परिक्रमाओं में पुष्ट करना चाहते हैं। पूजा हवन में परिक्रमा, जन्म मरण में परिक्रमा, मुण्डन विवाह में परिक्रमा ! जन्म से पूर्व शिशु की गर्भ में परिक्रमा, मनु की मान्यताओं पर प्रकृति और विधाता की मुहर है।

जीवन पर पड़ते ग्रहों की मायाओं के विभिन्न प्रभावों के सूक्ष्म दर्शन ने ही ज्योतिर्वेद के बहुमूल्य अंग ज्योतिष को गुरुकुल शिक्षा में विशेष स्थान प्रदान किया है। ज्योतिष को केवल फलित गणित अथवा भविष्यफल विज्ञान भर मान लेना भारी भूल होगी। ज्योतिष के द्वारा छात्र जीवन के सूक्ष्म रहस्यों, सचराचर की उत्पत्ति, स्थायित्व, व्यवस्था आदि का अति दुर्लभ ज्ञान पाते हैं। ज्योतिष उन्हें अन्तर्चक्षु खोलने में परम् सहायक होता है। एक ऐसी विद्या जिसके द्वारा वह स्वयं को निस्संदेह होकर पढ़ सके। मुहूर्त विज्ञान, सही समय पर सही कार्य करने की क्षमता, विभिन्न ग्रहों के संयुक्त प्रभावों में नाना प्रकार के अनुसंधान, औषधि, निर्माण अथवा किसी कार्य का श्री गणेश, यज्ञादिक के उचित समय का निर्णय, शुभ कार्यो का आरम्भ आदि की समुन्नत शिक्षा का स्वरूप हमें गुरुकुल शिक्षा में मिलता है।

गुरुकुल शिक्षा विज्ञान की एक अति महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि छात्र शिक्षा को सदा के लिये जीवन का अंग बना लेता है। शिक्षा और छात्र कभी भी अलग नहीं होते। शिक्षा व्यापक रूप से छात्र का सम्पूर्ण व्यक्तित्व बन जाती है। आधुनिक शिक्षा में सम्भवतः इस विचार को उचित सम्मान नहीं दिया गया है। शिक्षा और छात्र बहुधा अलग ही दिखते हैं। शिक्षा से डिग्री, डिग्री से सम्मान और नौकरी, नौकरी से घर और गृहस्थी बस ! सबकुछ अलग अलग एक दूसरे पूरक भर, फिर भी एक दूसरे से अनभिज्ञ ! सबके रंग अलग अलग। उदाहरण लें !

दिल्ली गया हुआ था। एक विदुषी मिलने पधारी। बाल मनोविज्ञान में उन्होने डाक्टरेट की हुई थी। एक कालेज में लेक्चरर भी थीं। उनसे बात करके हम अत्याधिक प्रभावित हुए। उन्होने इसी विषय पर शोध कार्य भी प्रकाशित किये थे, जो सम्मानित एवं पुस्कृत भी हुए। उन्होने बताया कि वे शीघ्र ही इस विषय पर विदेश में लेक्चर टुअर पर जा रही हैं। उन्होने अपना नया शोध भी हमे दिखाया और उसकी प्रस्तावना लिखने का अनुग्रह किया। हमें यह सब सुखद लगा।

थोड़ी देर बाद उनके पतिदेव भी पधारे। वे कुछ दुखी से लगे। कारण पूछने पर उन्होने बताया कि उनके एक ही बेटा है। उनकी पत्नी उसे इतना मारती है कि वह बेहोश हो जाता है। ऐसा सप्ताह में एक दो बार तो हो ही जाता है। उन्हें डर है कि कहीं वह मानसिक रूप से रोगी न हो जाये।

पहले तो हमें विश्वास ही नहीं हुआ। जानना चाहा कि बच्चे की मां कौन है ? सोचा शायद सगे सौतेले की बात तो नहीं ! उन्होने बताया कि उनका बच्चा उनकी पत्नी से ही है तथा उनका एक ही विवाह हुआ है। ज्ञान, डिग्रीयां और आचरण ? क्या आपने कभी तीन सिर वाला आदमी देखा है, जिसके तीनो सिर एक दूसरे को पहचानते भी न हों ? आधुनिक शिक्षा में सबकुछ हो सकता है।

गुरूकुल शिक्षा में प्रवेश के साथ ही बालक के लिये वेद का ज्ञान आवश्यक है। उसे ऋग्वेद के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा को अवश्य ही पढ़ना होगा। यह ज्ञान यज्ञोपवीत की भांति ही अनिवार्य है। यदि उसने इस ऋषि को नहीं पढ़ा है तो उसका यज्ञोपवीत संस्कार भी व्यर्थ माना जायेगा।

पौराणिक कथाओं के अनुसार ऋषि मधुच्छन्दा यज्ञ की ज्योतियों का वरण कर अनन्त के मार्ग पर जाने का निणर्य लेकर यज्ञ पशुपताग्नियों में प्रवेश करने जा ही रहे थे, तभी महामुनि विश्वामित्र ने उन्हे ऐसा करने से रोक दिया। मुनि विश्वामित्र ने उनसे प्रार्थना की कि ऋषि लोकहित में रूक जायें। दिव्यदृष्टा ऋषि विश्वामित्र ने ऋषि मधुच्छन्दा से कहा कि वे द्वापर युग तक पृथ्वी पर वास करें। उनके ज्ञान को उस समय पृथ्वी वासियों तक पहुचंना उनके द्वारा ही सम्भव हो सकेगा। महामुनि ने अपने १०० शिष्यों (कहीं पर पुत्रों की चर्चा भी है) से उन्हें अपना अग्रज मानकर, उनसे ज्ञान दीक्षा लेने का आदेश किया। ५० शिष्यों (पुत्रों) ने दम्भवश ऐसा करने से मना कर दिया। मुनि विश्वामित्र के शाप से वे सब मलेच्छ

हो गये। शेष ५० ने मधुच्छन्दा को अपना अग्रज माना। वे जेता माधुच्छन्दस कहलाये तथा नित्य अमर अवस्था को प्राप्त हुए।

इसलिये प्रत्येक छात्र के लिये यज्ञोपवीत के साथ ही इस ऋषि को पढ़ना, जानना, आचरण में उतारना परमावश्यक है। इसके बिना उसका जन्मकाल का शूद्रत्व नहीं छूटेगा। विश्वामित्र के शिष्य अथवा पुत्र भी इस ज्ञान का अनादर करने के कारण शूद्र (मलेच्छ) हो गये थे, तो हम भी इसका अनादर कैसे कर सकते हैं ? हमें भी शूद्रत्व से उपराम होने के लिये इस ऋषि को आत्मसात करना ही होगा। ऋग्वेद के आरम्भ के ११ सूक्त ऋषि मधुच्छन्दा के ही हैं। इनका विस्तार हम यथा समय करेंगे। इस समय यज्ञ के विषय में थोड़ा परिचय भर ग्रहण करें।

'य' का अर्थ उत्पति तथा 'ज्ञ' से ज्ञात होना। यज्ञ वैदिक शब्द है। इसका अर्थ है, सृष्टी, प्रलय आदि के ज्ञान को प्राप्त होना। जीवन रूपी पहेली के रहस्यों का अनावरण। आत्मा ही सम्पूर्ण यज्ञों का अधिष्ठाता, कर्त्ता, प्रणेता एवं मात्र समर्थ सत्ता है। गुरूकुल में बालकों को प्रतीकों के माध्यम से इस रहस्य को पढ़ाने के लिये प्रतीक के रूप में एक बालक अथवा आचार्य को आत्मा के प्रतीक के रूप में एक निमित्त बनाते हैं। उपरान्त प्राणवायु को उपऋत्विज के रूप में एक बालक का अथवा आचार्य का वरण करते हैं। ब्रम्हज्वालाओं के प्रतीक के रूप में अग्नि कुण्ड में प्रज्जवलित करते हैं। अन्नादिक, घृत तथा अन्य खादय पदार्थों को सांकल्य के प्रतीक के रूप में ग्रहण करते हैं। समिधा के रूप में फलदार परन्तु सूख गये वृक्षों की लकड़ियों का ही प्रयोग होता था। इस प्रकार वाहय प्रतीक यज्ञ के द्वार बालकों को सचराचर तथा उनकी उत्पति के रहस्यों से परिचित कराने की प्रणाली को यज्ञ कहते थे। कालान्तर में प्रतीक ही मूल यज्ञ मान लिये गये। इसके रहस्यों को आप तभी स्पष्ट कर सकेंगे जब आप प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा को विस्तार से जाने।

गुरूकुल शिक्षा में लीला ग्रन्थों तथा लीला कथाओं को व्यापक स्थान दिया गया है। श्रीराम लीला, श्रीकृष्ण लीला, विष्णु लीला, ब्रम्ह लीला,

महाशिव लीला, महादेवियों की लीला कथायें, महाभारत महापुराण लीला आदि असंख्य लीला कथाओं से गुरूकुल शिक्षा को सरल, मनोहर, हृदयस्पर्शी, सहजग्राहय बनाया गया था। गूढ़ रहस्यों को सरलतम बनाकर छात्रों को पारंगत करने की अनूठी मनोवैज्ञानिक प्रणाली है।

बालक जब किसी कहानी अथवा उपन्यास को पढ़ता है तो उसे एक बार में सबकुछ समझ में तो आता ही है, वह उसे लम्बे काल तक याद भी रख पाता है। परन्तु कोर्स की किताब का छोटा सा अध्याय बार बार रटने पर भी इम्तहान में याद नहीं रहता है। ऐसा क्यों ? इसका एक ही मनोवैज्ञानिक उत्तर हो सकता है।

बालक को कहानी अथवा उपन्यास आनन्ददायक, परम् रूचिकर, सम्मोहक लगता है। पढ़ने बैठता है तो उसे समय का ज्ञान ही नहीं रहता। ऐसा करने पर उसे डांट भी खानी पढ़ती है। परन्तु उसका सम्मोहन है कि जाता ही नहीं, छिपकर फिर पढ़ने लगता है।

क्या आज का शिक्षाविद उस उपन्यासकार से कम मनोवैज्ञानिक है, कम पढ़ा लिखा, कम समझदार है जो शिक्षा में सम्मोहन उत्पन्न करने में सक्षम नहीं है ? बालक को पाठशाला बिच्छु का घर क्यों लगती है ? क्या इसके लिये अकेला बालक ही दोषी है ? अथवा क्या बालक दोषी है ?

गुरूकुल के मनोवैज्ञानिक ऋषि एवं सन्त तथा आचार्य गण इस तथ्य से भली भांति परिचित हैं। वे ज्ञान एवं विज्ञान को अतिशय सरल, मनोरम, सम्मोहक तथा कथामय बनाकर छात्र को इसप्रकार पढ़ाते हैं कि जितना जानता है उतनी ही और अधिक जानने की उत्कन्ठा बढ़ती जाती है। मन है कि भरता ही नहीं है। उसे सुबह होने की तड़प है। कब सुबह हो और वह कक्षा में जाकर आगे की कथा सुने। कथाओं की आड़ में आचार्य उसके अबोध मन में सद् गुणों के स्वस्थ बीज बोये जा रहे हैं। बालक की जिज्ञासा उन्हें अनजाने ही संस्कार के रूप में मन की गहराईयों में आदर सहित ग्रहण करती जा रही है। वही शिक्षा जो इन्जैक्शन की सुई

जैसा भय और पीढ़ा देती थी, जिसे उसका जागृत एवं सुषुप्त मस्तिष्क कड़े विरोध के साथ अस्वीकार करता था। दबाव में आकर उसे ओड़ भर ही पाता था। गुरूकुल में पूर्ण आज्ञाकारी एवं जिज्ञासु पिपासु बन सहज ही आत्मसात किये जाता है। ऐसा लीला ग्रन्थों द्वारा ही सम्भव हो सकता था।

इसका यह अर्थ भी कदापि नहीं लगा लीजियेगा कि लीला ग्रन्थ अथवा कथायें कपोल कल्पित हैं। ऐसा कदापि नहीं है। सत्य ऐतिहासिक घटनाओं को लीलात्मकता का रूप देकर बालक के अचेतन मन में कथाओं के माध्यम से अच्छाईयों को रोपने की अदभुत विधा ही लीला कथायें हैं।

इतिहास के अमर पन्नों को गर्व सहित याद ही नहीं करना, वरन उन्हें अमृत उपदेश, सार्थक जीवन के अमिट संस्कार बनाकर, भावी पीढ़ियों के भोले अबोध सुकुमार मन को सचराचर का सार्थक भक्त बनाकर, अमृत बोने जैसा है। इतिहास मात्र इतिहास ही न रहे, बालक के वर्तमान का अमृत बने तथा उसके उज्जवल भविष्य का स्थायी स्तम्भ बन जाये। इसे उदाहरण सहित देखें।

दशरथ नन्दन श्रीराम की ऐतिहासिक कथा ही लें। त्रेतायुग की कहानी है। वर्तमान समय में हम कलियुग के लगभग पांच हजार कुछ सौ वर्ष में जी रहे हैं। इससे पूर्व हमने आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापर युग के जिये हैं। द्वापर से भी पूर्व का युग त्रेता है। यही श्रीराम के समय के इतिहास का साक्षी है। लाखों वर्ष पूर्व का इतिहास, लीला कथाओं के माध्यम से कलियुग में प्रवेश पाया है। इसलिये हमारे इतिहासकार इसके समय को लेकर अत्याधिक भ्रमित हैं। वे लीला कथाओं के समय को श्रीराम का काल समझ बैठते हैं। इसमें उनका दोष भी नहीं है। लीला शब्द उनके लिये बिल्कुल अनजाना है। यह परिपाटी उन्होने कभी जानी अथवा सुनी ही नहीं।

इतिहास के ज्योतिर्मय घटनाक्रम जब समय के अन्तरालों को लांघते हुये, युगों की सीमाओं को पार करने लगते हैं, समय के साथ गुरूकुल तथा सन्त मनीषीजन उन्हें तथा उनकी अच्छाईयों को समाज हित की मथानियों से निरन्तर मथते हैं। इतिहास की छाछ, समय के अन्तरालों में छितराती चली जाती है। अध्यात्म का मक्खन उभर कर इकट्ठा होने लगता है। विशुद्ध ऐतिहासिक घटनाक्रम, समय के साथ आध्यात्मिक स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि यह प्रक्रिया बहुत धीमी तथा समय के बहुत लम्बे अन्तरालों में होती है, इसे होते हुए जान अथवा भांप पाना कदाचित सरल नहीं होता है। अब यह कहना कि ग्रन्थ विशुद्ध ऐतिहासिक है, सच नहीं हो सकता। यह भी कहना यह ग्रन्थ ऐतिहासिक नहीं है, यह भी सच कदापि नहीं हो सकता। सच बस इतना है कि यह ग्रन्थ इतिहास को स्वयं में समेटे हुए, एक विशुद्ध अमृत लीलात्मक ग्रन्थ है।

श्रीराम कथा के तीन सौ से अधिक प्रसिद्ध तथा मान्य कथाकार हैं, जो केवल भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व तथा समय के अन्तरालों में फैले हुए हैं। ऐतिहासिक घटना भले ही एक क्यों न हो, कथायें कुछ भिन्न हैं ही। उड़िया रामायण में एक पत्नी व्रती श्रीराम के १८ विवाह कराये गये हैं। वहीं अखण्ड ब्रम्हचारी हनुमान को भी अकेला नहीं छोड़ा गया है। इन्डोनेशियन रामायण में श्रीराम के लगभग तीन सौ विवाह कराये गये हैं। हनुमान को भी १८ पत्नियों वाला भरतार बनाया गया है। रावण को आदमखोर बताया गया है। रावण अपनी प्रियतमा को मारकर तथा उसके मांस को भून कर खाता है। जबकि रावण एक ऋषि का पुत्र है। वेदों का ज्ञाता पण्डित तथा सभ्य है। ऐसा क्यों किया गया ?

जब भी इतिहास के महानायक, लीला कथाओं के नायक बन समय के अन्तरालों को लांघते आगे बढ़ते हैं, जहां कहीं, जिस देश काल की दहलीज को छूते हैं; उस समाज की अच्छाईयां और समृद्धि नायक को मिल जाती है। सारी बुराईयां और अपवाद बेचारे खलनायक का भाग्य बन जाते हैं।

इन्डोनेशियन समाज में स्त्री सम्पत्ती है। नायक को भूखा गरीब कैसे दिखा सकते हैं ? श्रीराम को ढेरों स्त्रियां मिलनी ही थीं। रावण खलनायक है। उसे आदमखोर बनना ही होगा। हनुमान भी बीबियों के बिना कैसे रहेंगे ?

अब यदि इतिहासकार इन घटनाओं को लेकर ऐतिहासिकता पर सन्देह करने लगे, तो उसके साथ सहानुभूति ही हो सकती है। कथाओं के सहारे समय खोजने लगे तो आप उससे सहानुभूति के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं ? गौरवमय इतिहास को प्रत्येक छात्र का वर्तमान तथा उज्जवल भविष्य बनाने की विलक्षण कल्पना से ही लीला काव्य एवं कथायें प्रकट होती हैं। छात्र को उसके जीवन के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, कृतित्व, सतसंगतियां, विसंगतियां, नाना विचार, मार्ग, नाना भावों का विषद दर्शन, अच्छे एवं बुरे कर्मो के परिणाम आदि का ज्ञान गुरूकुल में इन्हीं लीला ग्रन्थों के द्वारा होता था।

श्री दशरथ अयोध्या के नरेश हैं। लीला कथा में अयोध्या अथवा अवध का अर्थ है, जिसे जीता न जा सके अथवा जिसका कोई वध न कर सके। इतिहास को लीला का रूप देते हैं। दशरथ अर्थात जिसने दश (पांच ज्ञानेन्द्रियां + पांच कर्मेन्द्रियां) इन्द्रियों को अपने वश में रथ अर्थात बांध अथवा नाथ लिया हो। ऐसा मन बनेगा दशरथ ! जिसने दश इन्द्रियों को दश मुख बना लिया है। इन्ही की क्षुधा तृप्ती के हित में वह सबको लूटकर मैं और मेरों के लिये एक सोने की लंका बनाना चाहेगा कहलायेगा दश मुख वाला दशानन रावण ! मन की राहें दिखायीं हैं यहां पर ! मन को निग्रह कर लिया अर्थात रथ लिया तो मेरा मन बन दशरथ मुझे घट घट वासी अजर अमर अविनाशी आत्मा श्रीराम से मिला देगा। आत्मा ही परमात्मा (परम् + आत्मा) का लीलावतार है। श्रीराम लीला कथा में परमेश्वर महाविष्णु के अवतार बताये गये हैं।

यदि दश इन्द्रियां दश मुख बन मुझे अपनी अतृप्तियों में बांध लेंगी, मेरी अवस्था श्रीराम द्रोही रावण के जैसी हो जायेगी। अपने और अपनो के

हित में भटकना ही मेरी नियति होगी। जीवन के मूल्य, सिद्धान्त, जीवन के लक्ष्य, सबकुछ मेरे ही द्वारा भक्ष्य लिये जावेंगे। रह जायेंगी बाकी अतृप्तीयां और इन्द्रियों की भूख। एक पीढ़ादायक, सड़ी हुई दिशाहीन, लक्ष्यहीन जिन्दगी ! हर दिन पाप कमाती।

आदिकाल से नियमपूर्वक, हम जो भी जनपद, कस्बा, ग्राम अथवा शहर बनाते हैं, सदा उसके उत्तर में देवालय बनाते हैं तथा दक्षिण दिशा में अनिवार्य रूप से श्मशान घाट बनाया जाता है। उत्तरायण देवगोल है तथा दक्षिणायण यम (मृत्यु का देवता) गोल है। उत्तर का राम बनवासी हो दक्षिण जायेगा। जानकी (जीवात्मा, बुद्धि) मांगेगी सोने का हिरन (मृगतृष्णा) ! जायेगा आत्मा श्रीराम मृग के पीछे और हर ली जायेगी उसकी प्रेयसी जानकी (जीवात्मा)! मन दशानन उसे ले जायेगा लंका में ! मांगा था बस एक छोटा सा सोने का हिरन ! मिल गयी पूरी सोने की लंका ! क्या जानकी सुखी है बता ? क्या तू भी कभी सुखी होगा ?

मन बनके दशानन रावण, मुझे बना के अर्थी लिये जा रहा है लंका ! दक्षिण की ओर शवदाह गृह में, शमशान घाट में ! होते जो आत्मा श्रीराम मुझमें तो कौन करता साहस मुझे अर्थी बनाकर लंका लाने की ? उत्तर दक्षिण कहानी मेरी है। मेरा उत्तर है अवध राम की नगरी ! मेरा दक्षिण है रावण की सोने की लंका ! सोना ही सोना है, हर ओर फैला है। बस आत्मा श्रीराम ही नहीं है। शव सोने का क्या करेगा ? (इस लीला कथा का विस्तार 'सरयु के तट' में देखें –सम्पादक)

इसी प्रकार द्वापर युग के महा नायक श्रीकृष्ण की ऐतिहासिक कथा का काल लगभग पांच हजार सात सौ वर्ष पूर्व है। लीला कथा, नित्य की कथा होने से, काल की सीमा से बाहर ही रहती है। यहां मेरा आत्मा ही श्रीकृष्ण है। (श्रीकृष्ण कथा का विस्तार रहस्यलीला जादु और जादुगर में देखें)।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• अनन्त की राह और जगतलीला !

जीवन पहेली के तन्तुओं को हमें खोजना होगा। इसके तन्तु करोड़ों वर्षों के लम्बे अन्तरालों में छितराये हुए हैं। केवल पृथ्वी पर ही नहीं, अनन्त आकाशगंगाओं में इनके सूत्र छितराये हुए हैं। इनके सूत्रों के तथ्य एवं प्रमाण भी हमें खोजने होंगे। इसके लिये हमें अतीत की कृतियों, मान्यताओं एवं धारणाओं को गहराई से स्पष्ट करना होगा।

जल पृथ्वी पर उतारा गया था। उसे हम गंगा कहते हैं। गंगा शब्द का अर्थ जल नहीं होता है। वेद में एक शब्द अथवा अंकन मन्त्र में आता है, 'ग्वगं' (˘ʋ) जिसका उच्चारण 'ग्वगंवा' के रूप में भी होता है। इसका अर्थ तथा व्यवहार बहुधा उत्तर भारत के विद्वान तथा दक्षिण भारत के विद्वान अलग प्रकार से करते हैं। इसका वैदिक अर्थ 'आकाशगंगाओं से अवतरित है जो', ऐसा कहा गया है। आकाश से अवतरित जल को इसी से गंगा कहा जाता था। जीव अथवा जीवात्मा भी आकाश से ही अवतरित है। इसलिये जीव को भी इसी सम्बोधन से कहीं कहीं पुकारा गया है।

ज्योतिर्वेद की मान्यताओं से एक कथा उभर कर हमारे सामने आती है। इस आकाशगंगा में जीवन को संचारित करने के अनुष्ठान के कई कारणों में से एक कारण इस आकाशगंगा की सम्पूर्ण परिक्रमाओं को सूक्ष्मता से जानना भी पृष्ठ उद्देश्य रहा है। इसकी परिक्रमाओ के आकार, जीवन पर नाना समय में पड़ने वाले प्रभाव, ज्ञान विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों की जानकारी तथा खोज द्वारा जीवन की धाराओं को आकाशगंगा में उतारकर इसे जीवन से परिपूर्ण करना, भी एक उद्देश्य रहा है। इसकी चर्चा हमें वेद मन्त्रों में परोक्ष में अथवा यूँ कहें उदाहरण के रूप में मिलती है। कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जहां इसकी स्पष्ट चर्चा है। सर्व प्रथम कथा को ही लेंगे। ऐसे अभियान नये नहीं हैं। मानव सदा से जिज्ञासु एवं नया जानने के लिये उत्सुक रहा है। आज भी हम वह सब जानना चाहते

हैं, जो हम नहीं जानते हैं। उसके लिये हम कितना भी बड़ा खतरा उठाने को सहर्ष तैयार हो जाते हैं। भले ही इसमें जीवन का कितना बड़ा खतरा क्यों न हो। यह स्वभाव हमने अपने पूर्वजों से ही पाया है।

सबसे पहले जीवन आकाश गंगा से इस आकाशगंगा में उतारा गया। यज्ञों के द्वारा परिस्थितियों के अनुरूप जीव अथवा जीवात्माओं की सृष्टी की गई। समय के साथ जीवात्माओं के स्वरूप परिस्थितियों की आवश्यकता के अनूरूप ढलते गये। इस आकाशगंगा में देव (अशरीरी) सृष्टी के लम्बे अन्तरालों के उपरान्त ग्रहो की मायाओं में भी जीवन को उतारने तथा उसपर पढ़ने वाले प्रभावों को जानने की उत्कट अभिलाषा के चलते मानव सृष्टी की कल्पना को साकार करने के भागीरथ प्रयास किये गये। पृथ्वी पर जीवन को माया से सतत् संघर्षरत रहना होगा। क्या यहां पर भी जीवन को नित्य अवस्था प्रदान कर सकते हैं ? इस प्रश्न का उतर खोजने के लिये हम धरती पर लीला हेतु उतारे गये थे। हमें पृथ्वी पर जीवन और मृत्यु के थपेड़ों को सहते हुए अनुसन्धान को दिशा देनी होगी। क्षीरसागर में देव योनियों में रहते हुए हमारे बाकी साथी इस अनुसन्धान में हमे सहयोग प्रदान करेंगे। एक नाटक अथवा लीला के रूप में हम बारम्बार धरती पर लीला करने हेतु आते रहेंगे हमें आकाशगंगा की पूरी परिक्रमाओं का अध्ययन करना है।

जगत हमारी लीला स्थली होगी। जीवात्मा धरती पर शरीर धारण करेंगे। जगत रूपी नाटयशाला के किरदार निभायेंगे। मृत्यु के द्वारा अपने किरदार से उपराम होते, अपने वस्त्र तथा तथाकथित उपलब्धियों को धरती को लौटाकर पुनः देवयोनियों में लौट जायेंगे। उनका स्थान दूसरे किरदार (जीवात्मा) जन्म के द्वारा धारण करेंगे। अनुसन्धान भी चलते रहेंगे तथा समय भी लीला के आनन्द में सुखपूर्व बीतता रहेगा। यात्रा बहुत लम्बी है। रहना धरती से आकाश तक ही पड़ेगा। इसकी चर्चा आप अथर्ववेद में भी पायेंगे।

जगत एक नाटयशाला है। जहां जीवात्मा अपना किरदार निभाने के लिये गर्भ में प्रवेश पाता है। यथा किरदार यथा गर्भ में उसे प्रवेश मिलता है। जगत रूपी लीला कमेटी का निर्देशक आत्मा है। जीवात्मा को अभिनय के अनुरूप वस्त्र (शरीर) आत्मा ही बुनकर पहनाता है। माता पिता वे निमित्त पात्र हैं जो आत्मा का सहयोग करते हैं। वस्त्र को बुनने में सम्पूर्ण सचराचर अपना सहयोग प्रदान करता है। पांचो तत्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) तथा सभी ग्रहों नक्षत्रों के प्रभाव तथा माया का सहयोग लेना पड़ता है। इसी सामूहिक अनुष्ठान को यज्ञ कहते हैं। जो यज्ञ वाहय रूप से आप देखते हैं, वे सब इसी मूल यज्ञ के प्रतीक हैं। जीवात्मा के पूर्व जन्म के संस्कारों से इसे आत्मा द्वारा अलंकृत किया जाता है। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा नवजात शिशु जन्म पाता है। धरती पर वस्त्र के बिना वह रह नही सकता। शरीर ही उसका मूल वस्त्र है। आत्मा ही सामूहिक यज्ञ के द्वारा उसका स्थायित्व निश्चित करता है। आत्मा को भी जीव के साथ इस वस्त्र के स्थायित्व हेतु रहना पड़ता है। इसी को महाभारत महाकाव्य में महर्षि वेदव्यास ने लीला के रूप में दर्शाया है।

दश इन्द्रियों के अर्जन (संकलन) से अर्जित होने के कारण जीवात्मा की निर्णायक बुद्धि (जो उसके होने की पहचान भी है। बुद्धि से ही स्वयं तथा जगत को पहचानता है तथा इसी से पहचान व समाज में स्थान भी पाता है।) को अर्जुन नाम संज्ञा प्रदान की गई। इन्द्रियों के द्वारा अर्जित (संकलित) होने के कारण उसे इन्द्र का पुत्र कहा गया। संस्कृत भाषा में मन को इन्द्र कहते हैं, तथा मन को इन्द्रियों का अधिपति कहा गया है। अर्जुन इन्द्र के द्वारा दिये गये वर से उत्पन्न बताया गया है। शरीर को संस्कृत भाषा में रथ भी कहते हैं। इस महाकाव्य में शरीर रूपी रथ पर बुद्धि रूपी अर्जुन महारथी के रूप में बैठा हुआ है। आत्मा को ही लीला में श्रीकृष्ण के रूप में दर्शाया गया है। आत्मा ही शरीर का निरन्तर निर्माण, धारण, रक्षा, पुनर्व्यवस्था में लगा रहता है। आत्मा ही बनके शबरी का राम, जीव के जूठे भोजन को ग्रहण करता, यथा देह यथा आवश्यकता, रक्त, शक्ति तथा सामर्थ्य में ढालता रहता है। जगत एक नाटयशाला है। हम सबको जीवन रूपी महाभारत को जीतकर स्वर्गारोहण करना है।

कल्पना करें आप एक बहुत बड़े समुद्री जहाज पर एक बहुत ही लम्बी यात्रा पर जा रहे हैं। यात्रा बहुत लम्बी है। आप जहाज में ही समय कैसे बितायेंगे ? इतना लम्बा समय बिना कुछ किये कितना ऊबाउ और थकाने वाला होगा। तब आप भी कुछ ऐसा ही करेंगे जैसा पुराने समुद्री जहाजों में कम्पनी वाले करते थे। आमोद प्रमोद गृह, खेल के मैदान, अस्पताल तथा धर्म का स्थान भी। खाने पीने रहने की समुचित व्यवस्था के साथ ही समय बिताने के समुचित साधन तथा इनके साथ ही किसी भी परिस्थिति में सभी प्रकार की सम्भावनाओं का पूर्ण निदान आदि की सहज व्यापक सुविधाओं की पूरी व्यवस्था। जहाज में यात्रा के दौरान बच्चे भी पैदा हो सकते हैं। कोई यात्री बीमार भी हो सकता है। किसी यात्री की मृत्यु भी हो सकती है। कोई जोड़ा यात्रा के दौरान विवाह सूत्र में बंधकर अपनी यात्रा को चिरस्मरणीय बनाने की कल्पना को साकार भी कर सकता है। जहाज को सभी सम्भावनाओं के लिये पहले से ही तैयार रहना होगा।

यात्रा में विपत्ति का भी सामना करना पड़ सकता है। किसी दुर्घटना में जहाज क्षतिग्रस्त भी हो सकता है। उसके लिये आपात व्यवस्थाओं को पहले से ही तैयार रखना होगा। जहाज पर दस्यु समूहों के आक्रमण भी हो सकते हैं। उसके लिये भी पहले से ही समुचित व्यवस्था करनी होगी। जहाज यात्रा में कहीं फंस भी सकता है। ऐसी अवस्था में यात्रा का समय अत्याधिक लम्बा हो सकता है। जहाज को इसके लिये भी सावधानी पूर्वक व्यवस्थायें पहले से ही जुटानी पड़ेंगी।

और !!! जब यात्रा का एक दौर ४३,२०,००० वर्ष जितना बड़ा हो ? यात्री भी अरबों खरबों की संख्या से कहीं अधिक हों ? असंख्यों प्रजातियों के हों ? नाना भाषाओं के और भाषा विहीन हों ? पढ़े लिखे समझदार और निपट गंवार हों ? सभ्य संयत, शांतिप्रिय हों और भयंकर जंगली खूंख्वार हिंसक हों ? क्या कोई कैप्टन इतना नादान होगा कि बिना सोचे समझे, बस एक ही 'बिग बैंग' से जहाज के लंगर उठा दे ? यह गल्ती क्या विधाता कर सकता है, जिसे एक साधारण समझ वाला व्यक्ति भी नहीं करना चाहेगा ?

जीहां !!! इन्हीं कथाओं को तथा इनकी व्यवस्थाओं को जानकर तथा जो नहीं जानते थे उसे जानने के लिये ही जीवन को धरती पर उतारा गया था। धरती एक जहाज के समान है। हम सब यात्री हैं। अनन्त की यात्रा के पथिक ! हम और हमारा जीवन उसी अनुसंधान का अंग है, जिसके लिये हमारे पूर्वजों ने कल्पना की थी तथा हमने स्वेच्छा से आवागमन का वरण किया था। इसका विषद वर्णन अथर्ववेद में, नाना पुराणों में, उपवेदों में तथा संहिताओं में हुआ है। इन्ही की व्यवस्था के रूप में ही गुरूकुल शिक्षा की कल्पना को मनु तथा ज्योतिर्वेद ने स्वरूप प्रदान किया था।

'हम विचरण कर रहे थे क्षीर सागर में। परंब्रम्ह के अंश, जीवात्मा ! हममें कुछ शान्त थे तो कुछ चंचल जिज्ञासु और उत्सुक ! जो शान्त थे उन्होने क्षीरसागर को स्थान बना लिया। जो चंचल और जिज्ञासु थे वे क्षीरसागर की परंशांति को छोड़, पृथ्वी की ओर चल दिये।'

यही कथा आप सुनेंगे अथर्ववेद में, मुझसे ! विश्व संस्कृत शब्दकोश की मर्यादा में। अभी तो हम सूरज की कहानी की हर ओर फैलती किरणों के संक्षिप्त परिचय भर को जानने का प्रयास कर रहे हैं। बीच में ही यदि साख्य और प्रमाण ले बैठे तो सम्भव है कि मूल कथा ही अस्पष्ट रह जाये। इसलिये हम विषय का पहले परिचय करेंगे, उपरान्त सभी ग्रन्थों से उनका परिचय साक्ष्य एवं प्रमाण सहित सन्देहरहित होकर ग्रहण करेंगे।

जीवात्मा धरती की माया में अपने पूर्व ज्ञान को भूल जाता है। माया के प्रभाव के कारण उसका देव ज्ञान जन्म के कुछ काल के उपरान्त क्षीण होने लगता है। इन्द्रियों के बहिर्मुखी होने के कारण वह अन्तर्मुखी स्वभाव से भी दूर हटने लगता है। वाहय जगत का आकर्षण उसे लुभाने लगता है। उसके माता पिता बन्धु बान्धव उसे अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। वह स्वयं को भूलने लगता है। धीरे धीरे वह अपनी पूर्व पहचान को सदा के लिये खो बैठता है। वह वातावरण तथा अपने स्वजनो को तो पहचानने लगता है, परन्तु अपने लिये मात्र एक अजनवी सा बनकर रह जाता है।

फिर वह भोला सुकुमार अजनवी नयी परिस्थितियों में अपनी नयी पहचान खोजने लगता है। अपने अतीत से कटा, परिस्थितियों से ठगा, अपनी पहचान को वाह्य जगत के तथाकथित स्वजनो से ग्रहण करने लगता है। भूल जाता है कि इस जन्म पहले भी वह था तथा इस जन्म के बाद भी वह रहेगा। वह कभी नहीं मरता है। हर बार उसका शरीर ही वस्त्र की भांति बदलता रहता है। वह अपनी नित्य पहचान को खोकर केवल सामयिक क्षणभंगुर पहचान को ही मूल पहचान मानकर एक सभीत, डरी हुई भ्रमित जिन्दगी जीने के लिये विवश हो जाता है। यहीं पर उसे गुरूकुल शिक्षा की जरूरत पड़ती है। जिससे वह नित्य जीवन की मूल धाराओं में सुखपूर्वक लौट सके। आसक्तियों की सड़ी हुई भ्रम एवं पीढ़ाओं की थोथी जिन्दगी से निकलकर ज्योतिर्मय जीवन की मूल धाराओं में लौटकर क्षणों के साथ न्याय कर सके। काश ! आधुनिक शिक्षाविद एक बार फिर अपनी शिक्षा के मूल उद्देश्यों पर गम्भीर विचार करते !

कुछ नव युवाओं ने एक बार मुझे कहा था,' स्वामी जी कैरेक्टर की नहीं, हमें कैरियर की जरूरत है, आप हमें चरित्र न पढ़ाओ।' उसके बाद जो कुछ उन्होने कहा शायद शिक्षाविद और शिक्षा मन्त्री सुनना न पसन्द करें।

आप अपने अतीत में थोड़ा झांक कर देखें। संगठित परिवार में रहते थे आपके पूर्वज। गुरूकुल शिक्षा की गोंद उन्हें कभी अलग होने नहीं देती थी। आधुनिक शिक्षा उन्हें इकट्ठा रहने नहीं देती। मैंने अपने आश्रम में कुत्तों के जोड़ों को लड़ते नहीं देखा है। क्या आप मुझे सभ्य मानव समाज में एक जोड़ा बता सकते हैं।

गुरूकुल में बालक यज्ञोपवीत के द्वारा पुनः अपनी सही पहचान पाने के प्रयास में है। अज्ञान की शूद्रता से द्विज की पहचान को ग्रहण कर रहा है। मन्दिर के रूप में उसे उसकी पहचान कराने वाला सशक्त माध्यम मिल गया है। उसका, उसकी आत्मा से भी अनुपम परिचय मन्दिर ने

कराया है। यज्ञ के द्वारा किस प्रकार वह उत्पन्न होता है, इस तथ्य से भी वह परिचित होने लगा है। अपनी कल्पनाओं में आकाश छूने लगा है। उसके जीवन के लक्ष्य धीरे धीरे स्पष्ट होने लगे हैं। वेद में आकर उसके रहे सहे सन्देह भी जाते रहे हैं। उसकी राह स्पष्ट है। लक्ष्य उसे गगन में साफ दिखने लगा है। वह जानता है कि वह अनन्त की राह का यात्री है। मानव योनि तो क्षणिक ठहराव भर है। कुछ देर के लिये कारवां ने यहां रूककर पढ़ाव किया हैं। कुछ थकान मिटानी है। कुछ नयी ऊर्जा बटोरनी है। सुबह से पहले काफिला फिर चल देगा अनन्त की राह पर। किसने लौटना है दुबारा। फिर मोह कैसा ? आसक्ति कैसी ? थोड़े से ठहराव भर के लिये कोई अपनी सारी यात्रा का सत्यानाश करेगा क्या ? कोई भले करे । वह कदापि ऐसा नहीं करेगा। वह आत्मा का निमित्त बनकर ही जीयेगा। आत्मा निष्काम भाव से जीवमात्र तथा सचराचर की सेवा में सतत् लगा रहता है। वह भी अपने जनक आत्मा के ही नक्शे कदम चलेगा। निष्काम आसक्ति से रहित कर्मयोग को धर्म के रूप में धारण करेगा। गुरूकुल के उपरान्त वह गृहस्थ धर्म को भी निमित्त भाव से ही धारण करेगा।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• गृहस्थ धर्म की पावन स्थली

गृहस्थ शब्द का अर्थ है,' गृहम् + स्थ् इति '। जो घर में टिका है।' कहां घर है आपका ? आप उस स्थान का पता बता देंगे, जहां आप सपरिवार रहते हैं। परन्तु वह स्थान आपका अर्थात जीव का घर कैसे हो सकता है ? शरीर के न रहने पर जीव को उस स्थान को चाहे अनचाहे छोड़ना ही पड़ता है। उसके अपने ही उसे वहां पर देखना पसन्द नहीं करते। उसकी गया करवाते हैं। उसे वहां से भगाते हैं। फिर पूछता हूँ आपसे, कहां घर है आपका ?

'शरीर !' आप सोच कर उत्तर देते हैं। जीव का घर शरीर ही हो सकता है। परन्तु आत्मा के द्वारा देह के त्यागने पर शरीर भी जीव के लिये व्यर्थ हो जाता है। जीव को भी देह का त्याग करना पड़ता है। शरीर प्रकृति में विलीन हो जाता है। प्रश्न यथावत है। उत्तर नहीं मिला है। आपका गृह कहां है ? आप गृहस्थ कैसे होंगे ?

'आत्मा'! जी हॉं ! आत्मा ही जीव अथवा जीवात्मा का घर है। जो आत्मस्थ है, वही सही अर्थों में गृहस्थ है। बीबी बच्चों के परिवार से कोई गृहस्थ नहीं बनता। गुरूकुल शिक्षा में तो कदापि नहीं। जो आत्मस्थ है, वही गृहस्थ है। गायत्री मन्त्र में उसने स्वयं को आत्मा सूर्य को अर्पित किया है। आत्मा ही उसका सर्वस्व है, 'तत् सवितुर् वरेण्यम्'! ऐसे आत्मा रूपी सूर्य का मैं वरण करता हूँ। गृहस्थ तो वह अपनी आत्मा से हो ही चुका है, गुरूकुल में। अब फिर से कैसे गृहस्थ होगा ?

गुरूकुल ने उसे बताया जगत एक नाटयशाला है। यहां उसे आत्मा का निमित्त होकर अपना किरदार निभाना है। जिस प्रकार परमेश्वर जगत आत्मा के रूप में सचराचर का निर्माण, वहन, पालन एवं धारण करता है,

उसी प्रकार तुम्हें भी आत्मा श्रीहरि के निमित्त के रूप में गृहस्थ धर्म को धारण करना होगा। तुम निमित्त गृहस्थ होगे।

'"क्या मैं अपने जनक आत्मा की भांति एक परिवार को, अपनी आत्मा का निमित्त हो, आत्मा की भांति ही अनासक्त, निष्काम भाव से धारण कर सकता हूँ ? जैसे आत्मा सचराचर को बिना किसी संकीर्ण लिप्तता के धारण करता है, उसी प्रकार मुझे भी आत्म तत्व की प्राप्ति के लिये एक परिवार को धारण करने की सामर्थ्य को पाना है, ना कि लिप्त हो जाना। जो लिप्त हो गया वह गृहस्थ कदापि नहीं हो सकता। उसकी स्थिति तो अन्धे धृतराष्ट्र के जैसी है। जो गृहस्थी की दुहाई भी देता है तथा कुल के नाश का कारण भी बनता है। कुल नाशक गृहस्थ नहीं हो सकते।"

जो सन्तानों को जीवन के परम् लक्ष्य से हटाकर केवल अच्छी नौकरी, बड़िया वेतन, कुछ ऊपर की मोटी आमदनी का लक्ष्य दे रहे हैं, मनु उन्हें गृहस्थ कदापि नहीं मानते। मैं और मेरों की संकीर्ण भावना की कल्पना केवल पिशाच योनियों में ही सम्भव हो सकती है। मानव तो ईश्वर का पुत्र है। वह इतना घटिया कदापि नहीं हो सकता। मनु मानव योनियों का विधान है।

गुरूकुल से लौटते ब्रम्हचारी को इसी भावना से गृहस्थ धर्म में प्रवेश करना है। मनु ने स्वयंवर प्रथा का विधान किया है। कन्या को स्वयंवर में पति चयन का अधिकार है। यह अधिकार माता पिता अथवा किसी अन्य (वर) को नहीं है। नारी की भावना को पूरा आदर दिया गया है।

असुर संस्कृतियों ने मनु को कभी नहीं माना। वे इस व्यवस्था के विपरीत पुरूष को ही सारे अधिकार प्रदान करते हैं। नारी मात्र भोग्या है। वह तो एक मिट्टी के खेत के समान ही पुरूष की सम्पत्ति भर है। पुरूष जिस प्रकार चाहे, जैसा चाहे उसे भोग सकता है। नारी को उसकी प्रत्येक इच्छा, कामना अथवा आदेश धर्मपूर्वक मानने होंगे।

मनु ने नारी को पूर्ण अधिकार तथा सम्मान प्रदान किये हैं। बचपन में कुमारी कन्याओं की पूजा का विधान हमें मनु की व्यवस्थाओं में मिलता है। विवाह में पति चयन का अधिकार मात्र कन्या को ही है। मन्दिर में पुरूष देवताओं के साथ देवियों को भी सर्वोच्च स्थान देकर मनु ने नारी के प्रति अपनी भावना का स्पष्ट दर्शन दिया है।

पूजा हवन तथा यज्ञादिक धार्मिक कृत्यों में नारी को पुरूष से पूर्व माना गया है। उसे पति के दाहिने (पूर्व, अग्रज के स्थान पर) बैठने का विधान किया गया है। पति को वानप्रस्थ अथवा सन्यास तबतक नहीं मिल सकता जबतक पत्नी उसे अनुमति सबके सामने आकर स्वेच्छा से प्रदान न करे। उसकी अनुमति के बिना वह ऐसा नहीं कर सकता है। जबकि असुर धर्म में पुरूष को नितान्त स्वेच्छाचारी बनाया गया है। नारी को धर्म अथवा धर्मस्थान पर जाने के अधिकार पर भी अंकुश लगाये गये हैं।

विवाह भी जगतलीला का नाटक है। इसे भी निमित्त धर्म की संज्ञा प्रदान की गयी है। विवाह मण्डप में विवाह हेतु आया वर वेद की ॠचाओं में नववधु से कहता है ' सुनो ! न तो तुम पत्नी हो तथा ना ही मैं पति। उत्पत्ति के रहस्य तुम नहीं जानती और ना ही मुझे मालूम हैं। आत्मा ही सम्पूर्ण सचराचर में उत्पत्ति कर्त्ता है। हमें अपने ही शरीर का अंग बनाना नहीं आता।

सम्पूर्ण सचराचर एक नाटयशाला भर है। तुम जीव रूप पत्नी का अभिनय करोगी और मैं आत्मा रूप पति का अभिनय करूंगा। इसलिये तुम अपना गाण्डीव (यज्ञोपवीत, जिसे दुर्गा यज्ञोपवीत कहते हैं।) मुझे धारण कराओ तथा मेरे ऐश्वर्य की स्वामिनी बनो। मेरी चल अचल सम्पत्ति पर पहला अधिकार तुम्हारा होगा, उपरान्त मेरा होगा। हमारी सन्तान पर भी पहला अधिकार तुम्हारा होगा, उपरान्त मेरा होगा। भौतिक जीवन में मैं तुम्हें सदा बांये रखूंगा। भौतिक जीवन ही संग्राम है जिसे मुझे यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव से लड़ना है। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। तुम्हें सदा बायें रखूंगा, तुम्हारा कवच बनूंगा। परन्तु उपलब्धि के क्षणों में तुम सदा मेरे से पूर्व,

मेरे दाहिने विप्राजोगी। धर्म एवं मोक्ष पर पहला अधिकार तुम्हारा होगा। अब तुम चाहो तो अपना समर्पण मुझे प्रदान करो। पिता द्वारा प्रदान किये गये वस्त्राभूषणों का परित्याग कर मेरे द्वारा लाये गये वस्त्राभूषणों को धारण कर पुनः यज्ञ मण्डप में विवाह हेतु पधारो।'

सप्त विषयों से उपराम हो आत्मा के निमित्त हम आत्म तत्व की प्राप्ति के लिये दाम्पत्य धर्म को धारण करेंगे। यह विवाह हमारे सत्य विवाह रूपी नाटक का पूर्वाभ्यास भर है। सत्य विवाह तो तब होगा जब जीव की ग्रन्थि सदा सदा के लिये आत्मा से बंध कर एक हो जायेगी। हम धर्मपूवर्क शास्त्र सम्मत इस दाम्पत्य को धारण करें। यदि पूर्वाभ्यास ही अपवित्र हो गया तो हमें सत्य विवाह के मंच पर जाने की अनुमति भी नहीं मिलेगी। तबतो सबकुछ नष्ट हो जावेगा। हमें प्रायश्चित की योनियों में भटकना पड़ेगा। इसलिये धर्मपूर्वक हम अन्तिम श्रद्धा एवं समर्पित भक्ति पूर्वक इसे धारण करें। हमसे कभी भी अनजाने में भी त्रुटि न हो।

गृहस्थ धर्म जहां एक ओर वानप्रस्थ धर्म के पूर्व की तैयारी है, छोटे पूर्वाभ्यास में उत्तीर्ण होकर, बड़े पूर्वाभ्यास में प्रवेश की योग्यता को प्राप्त होना है, वहीं इसका दूसरा अति महत्त्वपूर्ण कारण भी है। उसे भी जानना होगा। जिसप्रकार एक दम्पत्ति ने निमित्त होकर मुझे शरीर प्रदान किया, उसी प्रकार मेरा भी धर्म है कि भविष्य में आने वाले जीवात्मा के लिये मैं भी निमित्त बनकर आत्मा का नूतन सृष्टी में सहयोग करूं। निमित्त माता पिता बनू। बनाने वाला तो मात्र आत्मा ही है। यह मेरा परम् निमित्त कर्त्त्वय है। मुझपर आत्मा तथा माता प्रकृति का कर्ज भी है।

इन सारी व्यवस्था कथाओं से एक बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिये कि मेरा जीवन का उद्देश्य जो दिख रहा है उससे हट कर कुछ और ही है। मनु इस जन्म जीवन को किसी अन्य उद्देश्य के हित में निमित्त भर ही मान रहा है। पाना कुछ और है तथा दिखता कुछ और है। वह नहीं चाहता कि हम धरती से ही चिपक कर रह जायें। वह हमारी मंजिल कहीं और देख रहा है। वह हमें किसी भी प्रकार से भटकने नहीं

देना चाहता। क्यों ? उसे क्यों लगता है कि हम किसी दूसरी सत्ता की बहुमूल्य धरोहर हैं, हम किसी अजनवी स्थान पर किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उतारे गये हैं तथा हमे वहीं लौटना है ? क्या मनु का ऐसा सोचना अनुचित है ?

मनु के साथ ही प्रकृति भी तो वही सोच रही है तथा आत्मा भी उसका अनुमोदन भर ही कर रहा है। यदि ऐसा नहीं तो मृत्यु की अनिवार्यता क्यों ? मृत्यु की सीमा क्यों ? जीवात्मा को धरती पर रहने के लिये शरीर की अनिवार्यता क्यों ? मुझे सबकुछ छोड़ कर मरना क्यों पड़ेगा ? लौटने पर मेरा पिछला ज्ञान, पहचान और उपलब्धियां क्यों नहीं मिलती ?' मेरे साथ फांसी की सजा पाये अपराधी सा व्यवहार क्यों ? यह वर्णाश्रम धर्म की अनिवार्यता क्यों ? क्या मनु सचमुच मुझे क्षीरसागर का मूल वासी ही मानते हैं ? जीवन पहेली का मूल सूत्र मुझे क्षीरसागर में ही मिलेगा ?

गृहस्थ धर्म एक अति पावन पूजा स्थली है। एक पवित्रतम आश्रम है। सार्थक जीवन की आधारशिला है। आत्मा की भांति ही मुझे कुछ लोगों के परिवार को आत्मवत पवित्रतम भाव से धारण करना है। विषयों, आसक्तियों, लिप्साओं आदि के द्वारा इस पवित्रतम तप स्थली को मैला करने का अधिकार हममें किसी को नहीं है। इस तपस्थली से एक द्वार खुलता है वानप्रस्थ की ओर। यदि यह द्वार नहीं खुला तो सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा। असंख्यों जन्म भटक जावेंगे।

गृहस्थ आश्रम का समय भी गुरूकुल की भांति सीमित है। यह कोई ऐशगाह अथवा तफरीह गाह नहीं है। समय की सीमा के भीतर मुझे अगली कक्षा में प्रवेश लेना होगा। जो चूक जायेगा, सबकुछ गंवा देगा। मनु, प्रकृति अथवा पुरूष (आत्मा) हमें किसी भी प्रकार की छूट अथवा सांत्वना नहीं प्रदान करेंगे। हम अपने तर्कों से स्वयं को बहला अथवा मूर्ख तो बना सकते हैं, परन्तु समय (मनु), प्रकृति अथवा आत्मा को मना लेना सम्भव कदापि नहीं है।

चिड़िया का बच्चा अण्डे के खोल में कब तक रहता है ? जबतक उसके पंख बन नहीं पाते। उसके बाद भी क्या वह अण्डे के खोल में रहना चाहेगा ? कदापि नहीं ! भले उसने अभी जन्म पाया है। उसे विशेष समझ अथवा ज्ञान भी नहीं है। परन्तु फिर भी अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से वह जानता है कि उसे तुरन्त खोल से उड़ जाना होगा नहीं तो उसे बिल्ली अथवा कोई हिंसक जीव चट कर जायेगा।

हम क्यों नही गृहस्थी के खोल से बाहर निकल पाये ? पंख जो नहीं बने थे। हम भले अपने को झूठे तर्को से बहलाते रहें, समय की बिल्ली नहीं बहलने वाली, वह निश्चय ही हमें चट कर जायेगी। हमारी हताशा है कि पंख ही नहीं बने थे। उड़ कर जाते कहाँ ? इसीलिये जान कर भी अनजान बने रहे। सदा समय की बिल्ली ही हमें खाती रही। डींगों का असर बिल्ली पर नहीं होता।

गृहस्थ आश्रम दान, धर्म, सेवा, पूजा, जप तप की अति पावन स्थली है। परमेश्वर को भी लीलावतार में इसकी ही शरण लेनी होती है। जिसने इस पावन स्थली को लोभ मेरा तेरा की आसक्तियों से मैला कर दिया, उसने इस जन्म के साथ ही असंख्य जन्मों का तप खो दिया। मनु की व्यवस्थाओं एवं नियमों में देवताओं को भी छूट नहीं है। मनु की व्यवस्था में कोई भी मासूम नहीं होता। न्याय की तुला पर सब समान हैं। जिसने वक्त (मनु) को नहीं जाना, जो कुदरत के अक्षरों को नहीं पढ़ पाया, जिसने अपनी आत्मा को ही धोखा देना चाहा, उसके साथ यथा न्याय तो होगा ही।

आपका बेटा है। आपने उसे नये स्कूल में दाखिल कराया है। बच्चा पढ़ कर घर लौटा है। आप पूछते हैं कि उसे स्कूल कैसा लगा। वह उत्तर देता है कि उसे नया स्कूल तथा विशेषकर उसका क्लासरूम बेहद पसन्द आया है। उसका मन करता है कि वह क्लासरूम में सदा रहे। आप सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। फिर आपने पूछा कि क्या उसने पढ़ाई भी की?

बालक का उत्तर नकारात्मक है। उसने पढ़ाई नहीं की है। उसके उत्तर से आप अप्रसन्न हो उठते हैं। पाठशाला और कक्षा भी इसे बहुत पसन्द है। फिर इसने पढ़ाई क्यों नहीं की ? आपके पूछने पर आपका बेटा आपको बताता है कि उसने डर के कारण पढ़ना नहीं चाहा है। कैसा डर? आपके पूछने पर उसका उत्तर मिलता है कि उसने इस डर के कारण पढ़ना उचित नहीं समझा कि कहीं वह कक्षा में पास न हो जाये। पास हो गया तो क्लासरूम न छूट जायेगी ? उसे क्लासरूम से बहुत लगाव है। वह उसी क्लासरूम में ही सदा बने रहना चाहता है। आपको कैसा लगेगा ?

आप ने भी जीवन को पाठशाला नहीं मानना चाहा है। आपको भी पाठयक्रम से नहीं क्लासरूम से प्यार है। इसीलिये तो आप जीवन की दूसरी कक्षा, गृहस्थ से ही चिपक कर रह जाना चाहते हैं। अगली क्लास वानप्रस्थ को पास होकर प्राप्त होने में आपकी कोई दिलचस्पी नहीं है। भले मृत्यु मुझे स्कूल से बाहर कर दे, पास होकर मैं अगली क्लास न जाता।

वानप्रस्थ धर्म

एक राह ऐसी भी है जिसे सबने बिसरा दिया है। इस भूली बिसरी राह पर बहुत चहल पहल रहती थी कभी। इस राह से गुजरें हैं महान पूर्वज हमारे। इस राह के प्रत्येक कण को युगों और सहस्त्रब्दियों ने चूमा है। इसकी धूल में लोटकर मानव धन्य हुआ है। आज यह राह वीरान है। किसी के बड़ते कदमों की आहट अब सुनायी नहीं देती है। एक गहरा, बहुत गहरा सन्नाटा छाया हुआ है, हर ओर !

मनु की जीवन रूपी पाठशाला की तीसरी कक्षा है यह ! जीवन की अवस्था के साथ बंधी हैं पाठशाला की कक्षायें। मेरा भोला बचपन ही पहली कक्षा है। गुरूकुल में मेरा प्रवेश मुझे पाठशाला में ले आया है। ११ से १३ वर्ष की आयु में प्रवेश पाता हूँ। लगभग २५ वर्ष की आयु में

गुरूकुल से उत्तीर्ण होकर जीवन की नयी कक्षा में प्रवेश हेतु लौट पड़ता हूँ माया संसार की ओर ! गृहस्थ धर्म में प्रवेश ही मेरा अगली कक्षा में प्रवेश है। यहीं से मैं आयु की भी अगली कक्षा में प्रवेश पाता हूँ। युवावस्था में मेरा प्रवेश भी इसी कक्षा के साथ ही होता है। प्रौढ़ावस्था के साथ ही मुझे उत्तीर्ण होकर वानप्रस्थ की अगली कक्षा में प्रवेश करना होगा। यह मेरी आयु की तीसरी अवस्था है तथा जीवन पाठशाला की तीसरी क्लास है। वृद्धावस्था आयु की चौथी अवस्था होगी तथा पाठशाला की चौथी क्लास अर्थात सन्यास। जब समय ने आयु के साथ ही जीवन की अवस्थायें बदली, तो क्या आयु के साथ मुझे भी अगली कक्षाओं में उत्तीर्ण होकर जाना ही सही धर्म नहीं है ? क्लासरूम से चिपक कर रह जाने में क्या औचित्य है ?

यहां एक सन्देह मैं आपका दूर कर देना चाहूंगा। बाल विवाह कदापि सनातन धर्म की देन नहीं हैं। गुरूकुल से बालक २५ वर्ष की आयु में ही लौट पाता था। उस अवस्था में बाल विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। आपके सभी धर्मग्रन्थों में २५ वर्ष का अनिवार्य ब्रम्हचर्य की व्यवस्था है। इससे भी बालविवाह की प्रथा का निर्मूल होना स्वयंसिद्ध है। तीसरा कारण है स्वयंवर प्रथा ! जबतक कन्या परिपक्व अवस्था में नहीं होगी वह भारी भीड़ में पति का चयन कैसे करेगी ? इससे भी बालविवाह की भ्रांति निर्मूल सिद्ध होती है। फिर यह प्रथा आरम्भ कब और कैसे हुई ?

मध्य युगीन काल में भारत को दासता के बीहड़ अन्तरालों को घुट कर जीना पड़ा। विदेशी संस्कृति में औरत को कोई सम्मानजनक पद प्राप्त नहीं था। विदेशी कहीं कन्या को उठाकर हरम न कर लें, इस भय ने इस प्रथा को जन्म दिया था। धर्म, संस्कृति अथवा कछुवे पर जब भी वाहय प्रहार का भय होता है, तो वे स्वभावतः अंग समेटते ही हैं।

गृहस्थ धर्म की पावन तपस्थली से दो रास्ते दो विपरीत दिशाओं की ओर जाते हैं। अथवा दो अवस्थायें भी आप कह सकते हैं। पास अर्थात उत्तीर्ण अथवा फेल अथवा अनुत्तीर्ण। उत्तीर्ण होने की अवस्था में वानप्रस्थ धर्म को

प्राप्त करता सन्यास की ओर अग्रसर होगा, इसे शुक्ल मार्ग कहा है। इसका देव (आत्मा) यान है। इसमें पीछे आने वाली गति नहीं है। दूसरा मार्ग सकाम मार्ग है, जिसका पितृ (लकड़ियां वनस्पतियां, आसक्तियां आदि) यान है। इसमें बारम्बार पीछे आने वाली गति है। इसमें जीव अथवा जीवात्मा को निरन्तर तबतक भटकते रहना पड़ेगा जबतक वह पुनः मानव योनि प्राप्त कर उत्तीर्ण होता देवयान से ही गमन करे। मनु हमें कहीं छूट नहीं देगा। प्रकृति के नियम और ज्योतिर्वेद भी मनु का ही अनुमोदन करेंगे। मनु हमें हमारे उद्गम के प्रति सदा जागरूक रखना चाहेगा। अंश और अंशी को इतने दूर नहीं होने देगा कि वे एक दूसरे को भुलाकर सदा के लिये पहचान ही खो बैठें। महा पतन की धूल में ही खो जायें। फिर कभी उद्धार संभव ही न हो। थोड़ा रूक कर विचार करें कि मनु को भुला कर हमने इतने समय में क्या खोया है तथा क्या पाया है। कहीं बहुत देर न हो जाये। कहीं अन्धेरे और अधिक गहरे न हो जायें।

वानप्रस्थ धर्म का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये कि अब आपको जंगल में ही बस जाना होगा। जंगल में तो डाकू भी बसते है। उन्हें कोई वानप्रस्थी नही कहता। जीवन रूपी पाठशाला का अगला चरण अथवा अगली कक्षा का नाम है – वानप्रस्थ धर्म ! इन्ही को वैरागी भी कहने की परम्परा है।

हम जरूर रूक जाते एक ही क्लास में यदि समय हमारे रूकने का अनुमोदन कर देता। परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। हर बार हमने माया बटोरी और चाहा कि हम इसका सदा भोग करते रहें, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। हर बार समय ने हमारी इच्छा को एक ठोकर से नकार दिया और भेज दिया मृत्यु की गोद में। सबकुछ लुट गया ऐसे जैसे वह कभी हमारा न था। हम सदा गलत साबित हुए।

मनु है काल, समय, वक्त ! और ज्योतिर्वेद है जीवन उत्पत्ति की एक कभी न खत्म होने वाली सत्य कथा! चलें इनकी व्याख्याओं में और खोजें

राह अपनी अपनी ! अज्ञान की शूद्रता को ओड़कर हम पैदा हुए थे। ज्ञानार्जन की कक्षा में, गुरूकुल में हम द्विज धर्म को प्राप्त हो गये। ज्ञानार्जन ही मूल रूप से धनार्जन है। जो ज्ञान रूपी धन से धनी है, वही धनवान है। धन का अर्जन करने की मनोवृति ही वैश्य वृति कहलाती है। सबकुछ यहां पर गुण कर्म विभागसा है। श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्री कृष्ण ने ऐसा ही कहा है। हम ज्ञानार्जन करते वैश्य कहलाये।

गुरूकुल से लौटे और गृहस्थ धर्म को प्राप्त हुए। गृहस्थ धर्म ही क्षत्रिय धर्म है। यज्ञोपवीत के गाण्डीव से, गुरूकुल के अमृत ज्ञान रूपी अस्त्रों द्वारा; विषय, आसक्तियों और भौतिकताओं के सम्पूर्ण भ्रमों को नष्ट निर्मूल करते, जीवन को सार्थक आत्मा की राह देना। जीवन जयी होना है हमें। हम हारकर नहीं जायेंगे। एक योद्धा की भांति जीवन संग्राम में विजयश्री लेकर ही उर्ध्वगामी होंगें। अधोगामी होना हमें स्वीकार नहीं है। हम मनु और ज्योतिर्वेद के परम अनुयायी हैं। इससे हटकर कोई दूसरा विकल्प किसी के पास नहीं है। यदि कुछ है तो स्वयं को दिया गया धोखा भर है। कल मृत्यु उसपर 'झूठ है' की मुहर लगा देगी। इसलिये गृहस्थ धर्म को धर्म पूर्वक जीते हुए अगली कक्षा में अवश्य प्रवेश लेना है। रूक गये तो अपराधी होंगे। पितृ यान से चाण्डाल के घर की आग लेकर जाना होगा। निकल गये जो पास होकर, तो क्षत्रिय धर्म को जीतकर वानप्रस्थ धर्म में प्रवेश कर ब्राम्हण कहलावेंगे। गुण और कर्म के विभाग से ब्राम्हण धर्म को प्राप्त होंगे।

अतीत के युगों में प्रत्येक गृहस्थ नियम पूर्वक वानप्रस्थ धर्म को प्राप्त होता था। इसके लिये उसे एक यज्ञ करना पड़ता था. इस यज्ञ का नाम राजसूय यज्ञ है। 'राज' शब्द का अर्थ है – ज्योति। एवं 'सूय' शब्द का अर्थ है उत्पन्न करना। ज्योतियों को उत्पन्न करने वाला यज्ञ। कहीं कहीं इसका नाम गोमेध यज्ञ, ऐसा भी आया है। 'गो' का अर्थ प्रकाश है। 'मेध' का अर्थ है व्याप्त होना। ज्योतियों में व्याप्त होना। आत्मज्योतियों की राह जाना। वानप्रस्थ धर्म में प्रवेश करना।

समाज के सभी वर्गों के लोग अनिवार्य रूप से इस मार्ग का अनुसरण करते थे। जो नहीं जा पाता था उसे समाज में हेय दृष्टी से देखा जाता था। एक हारा हुआ खिलाड़ी ! राजा से लेकर समाज के किसी भी वर्ग के व्यक्ति का वानप्रस्थ प्रवेश का कार्यक्रम एक व्यापक उत्सव के रूप में मनाया जाता था। महाभारत लीला महाकाव्य में पाण्डवों ने भी राजसूय यज्ञ किया था। उसमें श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हुई थी। लीला कथाओं में लीलात्मक ढंग से समाज में प्रचिलित परम्पराओं का चित्रण होता है। श्रीराम लीला कथा में भी राजसूय तथा उपरान्त में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा आयी है। एक संक्षिप्त झांकी का अवलोकन करेंगे।

राजेन्द्र ने राजसूय यज्ञ की घोषणा कर दी। उद्देश्य ? राजन, राज्य को उसके उत्तराधिकारियों के नियन्त्रण में छोड़कर स्वयं जीवन की अगली कक्षा में प्रवेश कर रहे हैं। अब वे श्रीहरि के निमित्त होकर ही राज्य को परोक्ष रूप से धारण करेंगे। राज्य का सम्पूर्ण भार अब भावी उत्तराधिकारियों के कन्धों पर होगा। राजन स्वयं १२ वर्ष का वानप्रस्थ ग्रहण करते, आत्म चिन्तन, सत्संग, तप एवं साधना तथा तपस्या की राह पर गम्भीर होंगे। वैराग्य, तप तथा अनन्त की राह में युद्ध हेतु सन्नद होता एक जीवन जयी महायोद्धा ! असहाय कबूतर की भांति दीन हताश होकर मृत्यु का दुखद वरण ! अथवा जीवन जयी योद्धा बन मुस्कराते हुए उसका अनन्त की यात्रा के लिये स्वागत ! मृत्यु को देह का दान कर अनन्त की राह लेता एक महावीर ! जैसे आये, जीवन के खेल खेले, हारे और जीते, समय के साथ खेल के मैदान से बाहर निकले, लौट अपने घर गये। क्लब से खेलने का सामान (शरीर) लिया था खेलने के लिये। लौटाया और मुस्करा कर चल दिये। यही है कहानी हमारे नायक की। राज सम्मान ऐश्वर्य सब खेल ही तो हैं अब घर लौटने की तैयारी भी करनी है। सम्मान के साथ लौटना अथवा धकियाये जाने पर अपमानित होकर निकलना ? आपको क्या अच्छा लगेगा ?

१२वर्ष के वानप्रस्थ के उपरान्त एक वर्ष का अज्ञातवास लेंगे राजन। क्यों ? दुनिया को जान लेना इतना मुश्किल नहीं है। स्वयं को जान पाना

अति दुष्कर है। केवल ग्रन्थ पढ़ लेने से, पूजा, पाठ, माला, जप तप से व्यक्ति अपने प्रति नितान्त भ्रमित हो सकता है। जो वह है ही नहीं, भ्रमवश अपने को वही मान सकता है। १२ वर्ष के वानप्रस्थ में निसन्देह राजन ने निष्ठा एवं धर्म पूर्वक ज्ञान की प्राप्ति तप एवं साधना की। नियम पूर्वक जीवन लक्ष्य के लिये स्वयं को तैयार किया है। फिर एक वर्ष का अज्ञातवास क्यों ?

क्या वे सचमुच स्वयं को तैयार कर पाये हैं ? क्या वे सभी प्रकार की आसक्तियों को निर्मूल कर पाये हैं ? क्या उनकी चेतना की गहराईयों में आत्माद्वैत का भाव अटल हो चुका है ? कोई भी इच्छा अथवा अतृप्ति उन्हें क्षणिक रूप से भी भटका तो नहीं रही ? वे एक ऐसी राह पर जा रहे हैं जहां मार्ग में पड़ने वाले प्रत्येक पुल को पार करने के उपरान्त यात्री खुद ही जला देता है, जिससे वह कभी भी लौटने का विचार ही न मन में आने दे। अब नही लौटेगा कभी, अनन्त की राह पर बढ़ते रहना ही उसकी नियति है। जो उसने स्वयं स्वेच्छा से चुनी है। अन्यथा भी वह वहां रह नहीं सकता था। मृत्यु रूपी बिल्ली उसे पर कटे घायल कबूतर के जैसा नोच कर छितरा देती। एक बुझदिल कायर मौत ! मौत जब एक अनिवार्य सत्य है। सबकुछ भौतिक छिनना अटल सत्य है। ज्ञान विज्ञान पद प्रतिष्ठा निश्चय ही साथ छोड़ देंगे। उसे एक दयनीय मृत्यु अवस्था को वरण करना ही होगा। तब क्यों न वह एक योद्धा के वर्चस्व को प्राप्त होता, जिन्हें छूटना है कल, उन्हें स्वयं मुस्करा कर मनसा वाचा कर्मणा परित्याग करता अनन्त की राह अपने घर की ओर चल दे। उसे स्वयं को सही मायनो में तौलना है। इसीलिये वह एक वर्ष का अज्ञातवास लेगा। स्वयं को एक अजनवी प्रदेश ले जाकर इच्छारहित होकर, प्राणीमात्र की समर्पित सेवा करेगा, एक आत्मा के सहारे जीयेगा। अपना इम्तहान वह स्वयं लेगा। जब आश्वस्त हो जायेगा तो १८ दिन का महाभारत, यज्ञ की अग्नियों के सम्मुख लड़ता, पुनः यज्ञों के पूर्ण होने के उपरान्त, जल की धाराओं में प्रवेश करेगा। सारा अतीत धाराओं में बह जायेगा। धाराओं के उस पार एक सन्यासी प्रकट होगा। जो केवल वर्तमान ही जीता है,

अतीत लहरों में खो गया है। एको ब्रम्ह द्वितीयोनास्ति ! न इच्छा है, न चाह है ! बस एक अनन्त की राह है।

मनु और ज्यातिर्वेद की राह से हटकर मानव ने क्या खोया और क्या पाया है ? जब बूढ़े लोगों के जीवन की कल्पना करता हूँ तो कसाई बाड़े में बन्द बकरों की आर्त अनहद चीख मेरे कानों में गूंज जाती है, जिन्हें थोड़ी देर बाद कसाई के हाथों कटना पड़ेगा। आज समाज में लाचार बूढ़े लोगों की पीढ़ाभरी एवं दयनीय हताशा से कौन अनभिज्ञ है। वृद्धावस्था के नाम पर चलते आश्रमों की चर्चा से हम सब परिचित हैं। परनुचे कबूतरों जैसे ये बुड्ढे उन आश्रमो में कितने सुखी एवं आश्वस्त है ? क्या वे मरेंगे नहीं ? मनु की राह में, आत्मा की इस राह पर उनका बुढ़ापा अधिक सुखी आश्वस्त, आत्मसुख से वरद एवं मृत्यु के भय से वंचित, क्या यह विचार इतना बुरा था कि समाज इसे भुला दे ? आज पुरानी पीढ़ी को शिकायत है कि नई पीढ़ी उसका आदर नहीं करती, उसे सम्मान के साथ लादने को तैयार नहीं। क्या मनु के काल की पीढ़ी भी इसी पीड़ा को जीती थी ? जी नहीं ! उस काल पुरानी पीढ़ी एक सुव्यवस्थित जीवन शैली में किसी पर लदने को तैयार ही नहीं होती थी। उससे पूर्व ही स्वाभिमानपूर्वक वानप्रस्थ और समय के साथ सन्यास में प्रवेश कर, अनन्त की राह का अमृत सुख लेने चल देती थी। किसी की दया और भीख का प्रश्न ही नहीं उठता था। वे सब स्वाभिमान पूर्वक जीने के आदी थे। उन्हें मनु ही भाता था।

वानप्रस्थ धर्म को प्राप्त हो गये लोग निष्काम भाव से सेवा में लगते थे। गुरूकुल में छात्रों को निष्काम भाव से आचार्य बन कर उनके जीवन को अपने व्यवहारिक ज्ञान से अमृतमय बनाना। समाज को सुशिक्षित करना, मन्दिरों के माध्यम से सत्संग तथा सेवाओं द्वारा समाज की अदभुत सेवा। समाज को गलत दिशा तथा कुरीतियों से बचाना, समाज को आत्मा की राह के प्रति सचेत करते रहना, समाज की सोच को मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत करते रहना, प्राणी मात्र की सेवा के लिये समाज को जागरूक रखना तथा स्वयं भी सेवाओं के उन्नत आदर्श समाज के सामने रखते

रहना, उत्सव, त्योहार, पूजा व्रतादि के प्रति समाज को जगाये रखना आदि कार्य वानप्रस्थ धर्म की शोभा बनते थे। वे प्रत्येक घर के सम्मानित सदस्य हो जाते थे। एक घर क्या छोड़ा हर घर उनका हो गया। हर घर में उनकी प्रतीक्षा होती। बच्चे उनकी कथाओं में अमृत ज्ञान पीते तो युवा उनके अनुभवों तथा दिशा निर्देशों से जीवन को सुखद बनाते। उन्हें पाकर समाज धन्य होता, न कि वे किसी से दया की भीख मांगते।
मनु की इन व्यवस्थाओं में मनु की एक तड़प भी छिपी हुई है। मनु जीवात्माओं को उनकी राह से भटकने नहीं देना चाहते। वे क्षीरसागर की धरोहर हैं धरा पर ! उन्हें अपने मूल स्वरूप को खोने नहीं देना है। उन्हें अपने मूल स्थान तक पहुंचाना ही मनु की तड़प है। इसीलिये उसकी सम्पूर्ण व्यवस्थाओं के पृष्ठ में क्षीरसागर का भाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में विद्यमान रहता है।

व्यवहारिक एवं मनोविज्ञान की दृष्टी से भी यदि हम विचार करें तो मनु की व्यवस्था विलक्षण रूप से आश्चर्यजनक है। यौन आकर्षण स्थायी नहीं रहता जब तक उसमें अन्य भाव तथा प्रतिबद्धतायें भी उसमें प्रभावक रूप से न जुड़ी हुई हों। विवाह पर समाज, कानून, न्याय, प्रतिष्ठा, सन्तान का भविष्य, लोक लाज आदि परोक्ष प्रतिबद्धताओं का व्यापक दबाव न हो तो कितने जोड़े केवल यौन आकर्षण से बन्धे रह सकते हैं ? मनु ने विकल्प के रूप में आत्मा का पवित्र पूज्य एवं वन्दनीय आकर्षण जीवन में लाकर मनुष्य के जीवन को लक्ष्य परक एवं सुखद करना चाहा है। यौनाकर्षण को आत्मा की प्राप्ति से संयुक्त कर संबन्धों को वन्दनीय अमरता प्रदान करने का आलौकिक प्रयास किया है। यह अदभुत आश्चर्यजनक एवं वन्दनीय है। भौतिक एवं इन्द्रियोचित सम्बन्धों के क्षणिक आकर्षण में आत्मा के अमर संगीत का समावेश कर सम्बन्धों को चिरन्तन बनाने के प्रयास को भला कौन नकार सकता है। ऐसे ही प्रयास अतीत के युगों में लगभग सभी सम्प्रदायों अथवा धर्मो में भी हुए हैं।

क्रिश्चियन समाज में विवाह को धार्मिकता से जोड़ने के लिये चर्च में ही विवाह करने की परम्परा ने जन्म पाया। यह एक अनिवार्य नियम बनाया

गया, जो आज भी कायम है। जो विवाह चर्च में होता है वही जायज है। जो विवाह चर्च में नहीं होता वह नाजायज है तथा ऐसे विवाह से उत्पन्न संतानों को ही इन्डियन (नाजायज, अवैद्य अथवा गैरकानूनी) कहते हैं। जिन देशों में लोग चर्च में शादी नहीं करते उन्हें भी इसी नाम से पुकारा जाने लगा। आज भी इंग्लैंड के कानून में इन्डियन एक गन्दी गाली है, असंवैधानिक अपशब्द है तथा दण्डनीय अपराध है। इन्डिया, इन्डोनेशिया, वैस्टइन्डीज, न्युइन्डीज, मिनीइन्डीज आदि देश हैं। इन देशों में सिन्धु के नामधारी नदियां भी नहीं हैं, जैसी भ्रांन्तियां यहां के विद्वानों ने लोगों को गुमराह करने के लिये फैला रखीं हैं।

इसी प्रकार मुस्लिम समाज में भी विवाह को धर्म के साथ जोड़ा गया है। विवाह को उमर देने के लिये धर्म की निरन्तर खुराक की जरूरत को इस्लाम में भी माना गया है। एक प्रकार से सभी युगों में लगभग सभी सन्त, मनीषी एवं विचारक इस सत्य से सदा एकमत रहे हैं कि भौतिकता एवं आसक्तियों के छिछले जल में समाज जैसी बड़ी मछली का जीवित रह पाना नितान्त असंभव है। उसे आत्मा की अनन्त आस्था का अथाह सागर देना ही होगा। धर्म को शिक्षा का व्यापक अधिकार गुरूकुल के रूप में प्रदान कर मनुष्य के जीवन को सरल, सरस, मानवीयता से परिपूर्ण कर गगन की ऊचांईयों के लक्ष्य साधने के अनुभूत प्रयास किये गये हैं।

समय के साथ सामाजिक व्यवस्थाओं ने धर्म से किनारा करना प्रारम्भ कर दिया। शिक्षा एवं समाज पर भौतिकताओं का वर्चस्व होने लगा। धर्म को बुर्जुआ फूहड़ करार देकर विस्मृत की समाधियों में दफन करने का नया फैशन चल निकला। उसके परिणाम अब हमारे सामने हैं। नये अनुसन्धानों ने नित नयी समस्याओं को जन्मना प्रारम्भ कर दिया। उनके समाधान करने के प्रयास भी किये गये। समय के साथ प्रत्येक समाधान एक नयी भयंकर समस्या बनकर सामने आ खड़ा हुआ। अब हाल यह है कि समस्याओं को नियति के रूप में समाज पशुवत ढोने के लिये विवश है।

पाश्चात्य देशों में सामाजिक समरसता एवं पारिवारिक सौहार्द के हित में नये कानून एक नयी घुटन बनकर रह गये हैं। बच्चा यदि पुलिस को फोन कर दे तो पुलिस आकर माता पिता को हत्थकड़ी लगाकर ले जाती है। बच्चों को उनपर हो रहे अत्याचार को रोकने के लिये समाधान में के रूप में ये कानून अब उस समाज के सम्पूर्ण विनाश का कारण बनते जा रहे हैं। नई पीढ़ी अब सड़कों पर ही शिक्षित होना चाहती है। उसे न तो किसी का भय है और न ही किसी से लगाव है। बलात्कार हत्या, लूटपाट, नशा एवं उद्दण्डता, निरंकुश स्वच्छन्द जीवन ही पाठयक्रम बनकर रह गये हैं। समाधान ही भयावह समस्या बन गये हैं।

यौनाकर्षण किसी को भी लम्बे समय तक बान्ध कर रख नहीं सकता। अल्पजयी एवं अस्थिर मायावी होने के कारण इसके नित नये बदलते रूप सम्बन्धों की मिठास और आपसी विश्वास को सहज ही मिटा कर रख देते हैं। साधुता और मानवीयता इससे टकराते ही हवा हो जाती है। फिर शुरू होता है घृणा, वैमनस्य, प्रतिशोध, अविश्वास एवं हिंसा का नया गृहस्थ जीवन। आई लव यू का नया संस्करण बन जाता है आई हेट यू !

पाश्चात्य जगत ने इसे भी थाने और कानून की व्यवस्था में लाकर समाधान करना चाहा। औरत को कमजोर मानकर उसे पुलिस और कानून का संरक्षण देने के समाधान से समस्यायें अधिक विकट हो उठी हैं। थानेदार और वकील अब मिंया और बीबी के बीच में सोते हैं, सुरक्षा कारणों से। युवक शादी के नाम से ही चिढ़ने लगे हैं। चर्च को हटाकर नये समाधानों के नीचे एक सम्पूर्ण जाति विनाश का लावा पककर तैयार हो रहा है। मानव धर्म और समाज वे सड़े गले फटे हुये मुखोटे हैं जिन्हें अब नयी पीढ़ी दिखावे के लिये भी ओढ़ने को तैयार नहीं है।

भारत भी इस तथाकथित उन्नत विरासत में बहुत पीछे नहीं है। यहां भी पुरानी व्यवस्थाओं को तोड़ मरोड़कर भ्रमित कर केवल इसलिये उछाला जाता रहा है जिससे इनसे आसानी से निजात पायी जा सके।

आधुनिकता की दौड़ में भारत को भी अग्रणी स्थान मिल सके। इसके कुछ उदाहरण अति संक्षेप में आपके सामने रखता हूं।

सतीप्रथा को लेकर हाल ही में खूब कीचड़ उछाला गया। सती शब्द का अर्थ है जो जीवन के सत्य को अर्पित होकर जीये। इसमें जल मरने अथवा जलाकर मारने वाली बात कहां है ? सती सावित्री, सती अनूसूया यह सब कहां जलीं थी ? पुनः प्रथा (Custem) का अर्थ है जिसे समाज अनिवार्य रूप से नियम पूर्वक कर रहा हो। क्या देश के सामने ऐसी कोई विकट समस्या थी ? क्या इस देश में विधवायें प्रथा के रूप में जलायी जा रही थीं ? मैंने सारे देश में ऐसी कोई प्रथा प्रचलन में नहीं देखी तथा न ही किसी विशिष्ट नेता अथवा प्रधानमन्त्री के घर किसी विधवा को जलते सुना। फिर संविधान संशोधन के नाटक द्वारा सम्पूर्ण विश्व में यह अवधारण फैलाने का घृणित षडयन्त्र क्यों किया गया कि भारत में विधवायें एक प्रथा के रूप में जलायी जा रही हैं। मूल भारत की संस्कृति और लोग इतने घटिया तथा हिंसक हैं कि बेचारी विधवाओं को प्रथा के रूप में जला रहे हैं। इक्का दुक्का घटना को कोई पागल व्यक्ति ही प्रथा कह सकता है। यदि इस देश के अतीत में भी यह प्रथा होती तो राजा दशरथ की तीनो रानियों ने आत्मदाह अवश्य किया होता। तब यह घृणित नाटक का रहस्य क्या था ? एक सुसंगठित, सुव्यवस्थित षडयन्त्र ?

ब्रिटिश गुलामी में, लगभग ७० वर्ष पूर्व, राजा राममोहन के काल में विधवाओं के जलने अथवा जला देने की चर्चा अवश्य थी। परन्तु उसके कारण दूसरे थे। १२ वर्ष तक बिहार एवं बंगाल के बहुत से क्षेत्र अकाल की भारी मार सहते रहे। गुलाम भारतीयों की सुनने वाले आका वैसे ही नाराज थे। स्वाधीनता की हवा से बुरी तरह खफा थे। लोग भूख और महामारी से मर रहे थे। जब भी घर का कोई मर जाता, लोग उसे चिता देते। कुछ दिन बाद जब उसकी विधवा दिशा मैदान के लिये जाती तो कुछ लोग उसे जबरन उठाकर हरम कर लेते। यह सब उन आकाओं के इशारे पर होता जो हिन्दु मुस्लिम एकता को खत्म कर दंगे करवाना चाहते थे। जिससे आजादी की बात खत्म हो जाये। इन लगातार हो रही

घटनाओं से सभीत लोगों के पास कोई सुरक्षा के उपाय भी नहीं थे। विधवा को हरम करने के बाद वे लोग उसके पूर्व पति की सम्पत्ति पर कब्जा भी करने का प्रयास करते थे। इसी भय के कारण विधवायें चिता की आग में कूद जाती थीं, न कि यह किसी प्रथा के कारण हो रहा था। बालक राममोहन ने अपनी भाभी को भी ऐसा करते देखा था। कुछ लोग भयवश भी विधवाओं को जबरन आग में झोंक देते हों, ऐसा संभव है।

इसी को रोकने के लिये सनातनधर्म ने एक बड़ा कदम उठाया। गुलामी के काल में सुरक्षा के कारणों से महिलाओं का सन्यास समाप्त कर दिया गया था, उसे पुनः चालू किया गया। अब विधवा को उसके पति की चिता पर ही सन्यास देकर सती (सन्यासिन) घोषित करने की प्रथा चल निकली। सन्यासी का अतीत नहीं होता, उसका अतीत की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता। इसलिये कोई उसे हरम भी करेगा तो भी पूर्व पति के घर अथवा सम्पत्ति पर कब्जा नहीं कर सकता। साख्य और प्रमाण के रूप में आप मथुरा वृन्दावन और काशि का दौरा करें। पूर्व से आयी विधवाओं की बाढ़ का दर्शन करें। सारी सच्चाई अपने आप आपके सामने आ जायेगी। उनमें से कुछ के नाम व पते नोट करें। उनके बताये पते पर जायें। उनके घर के लोगों से उस विधवा के विषय में पूछें। गृहस्वामी भयभीत हो जायेगा। एक ही उत्तर मिलेगा – वह तो सती हो गई थी। वह आज भी भयभीत है। कहीं किसी ने उसे हरम तो नहीं कर लिया ?

यही चर्चा जब मैंने एक महानेत्री से की तो उन्होने माना कि सती ऐसी प्रथा तो नहीं है न स्वामी जी ! लेकिन सती को महिमामण्डित करने से समाज को गलत सन्देश जा सकता है। उनके तर्क सुनकर मैं अवाक रह गया था। उनका कुंवारी मां को महिमा मण्डित करना....दूसरों का हूरों और गुल्मों को महिमा मण्डित करना..........। सन्यासी का धर्म नहीं किसी को पीढ़ा देना। अमर और अमृत जैसे शब्दों में भी केवल 'अ' के हटते ही शब्द मर और मृत हो जाते हैं। अच्छाई में दुर्गन्ध और गन्दगी ढूंड़ना एक निहायत ही घटिया किस्म की मक्कारी हैं इसे कोई अक्ल से पैदल ही समझदारी कहेगा। राष्ट्रीय नेता राष्ट्र के चरित्र का प्रतिनिधत्व करते हैं।

सारा राष्ट्र उनके कृत्य से लज्जित अपमानित एवं कुण्ठित होता है। वे तो नेता हैं। उनके यहां जो होता ही नहीं, वही कोड आफ कण्डक्ट होता है।

दहेज प्रथा को लेकर भी समाज में भ्रांतियां फैलायी गयीं। इस प्रथा का आरम्भ कैसे हुआ। एक उदाहरण के रूप में देखें। गांव में एक परिवार के लड़के का विवाह, उसी गांव के एक परिवार की लड़की के साथ होना निश्चित हुआ है। सारे गांव ने दोनो परिवारों सचेत किया है कि वे ऐसा कदापि नहीं कर सकते। गांव इसका विरोध करेगा। ऐसा क्यों ? दोनो परिवारों ने जानना चाहा ! इसलिये कि ऐसा करने से नवदम्पत्ति का दायित्व दो परिवारों तक ही सीमित रह जावेगा। वे केवल दो परिवारों के प्रति ही उत्तरदायी होंगे। इससे समाज की उपेक्षा होगी। समाज का विखण्डन होने लगेगा। हम ऐसा कदापि नहीं होने देंगे। सारा ग्राम समाज मिलकर नवदम्पत्ति को समाज में स्थापित करेगा, जिससे वे सारे समाज के प्रति उत्तरदायी हों। लड़के का पिता हल बैल देगा। लड़की का पिता बैलगाड़ी देगा। सारे गांव से उनके बर्त्तन कपड़े तथा अन्य सामिग्री बटोरी जायेगी। भईया लोग मिलकर उनकी झोपड़ी बनायेंगे। विवाह सारे गांव का उत्सव है। इस प्रकार दहेज से सहेज कर नवदम्पत्ति गांव के मुखिया को प्रणाम करने जायेंगे तो वह दस बीघा जमीन का पट्टा लिखकर देगा। यह ही दहेज प्रथा है। आप बतायें इसके लिये मनु कितने बड़े दोषी हैं। उन्हें कितना बड़ा दण्ड दिया जाना चाहिये।

दोष प्रथा में नहीं हमारी दिशाहीन हो गयी सोच में है। प्रत्येक लड़की का पिता चाहता है कि उसे ऐसा दामाद मिले जिसकी तनखा भले कुछ कम हो पर ऊपर की आमदनी(घूस!!!) बहुत तगड़ी हो। लड़के का बाप चाहता है कि जब घूसखोर बेईमान के ही दाम ऊंचे हैं, तो मेरा बेटा सबसे ऊंचा मक्कार हो, जिससे बड़े दाम लगानेवाला मेरे दरवाजे पर गिड़गिड़ाने के लिये आये। अब आप ही बतायें जो रोजमर्रा की जिन्दगी में सुविधाशुल्क के बिना नहीं हिलता, वह ससुर से दहेज नहीं लेगा तो क्या उसके चरित्र पर दाग नहीं लग जायेगा ? लोग कहेंगे कुछ गड़बड़ है।

दोष है दिशाहीन शिक्षा में। तीन ही मूल सूत्र हैं – अच्छी नौकरी, तगड़ी सुविधा और वेतन, मोटी ऊपर की आमदनी। अब आप उस शिक्षित युवक से क्या उम्मीद कर सकते हैं। वह युवक स्वयं में कितना दोषी है ?

अब भारत में भी नये युग का प्रवेश होने लगा है। पति एवं पत्नी के सम्बन्धों में आत्मा को ही स्थान दिया था मनु ने। अमर आत्मा उनके सम्बन्धों को अमरता प्रदान करे। अब वह स्थान नये युग ने थानेदार को दे दिया है। बैडरूम में उसके आदेश पर ही पति पत्नी सारे आचरण करेंगे। थानेदार की सीटी को ध्यान में रखकर। हम एक सभ्य सुसंस्कृत भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं।

सारे विश्व ने समस्या के दो ही विकल्प खोजे , अतीत के युगों से अब तक। धर्म, आस्था, समर्पण एवं त्याग की गोंद से गृहस्थ जीवन की अल्प अवस्था को दीर्घजीवी बनाना अथवा नेता, वकील और थानेदार के द्वारा समस्या का निराकरण ?

हम नहीं भूल सकते कि गृहस्थ धर्म, समाज रूपी महल की नींव की एक मजबूत कड़ी है। इसी पर सारे समाज का ढांचा टिका हुआ है। जरा सी भूल सारे समाज, मानवीयता और जाति विनाश का कारण बन सकती है।

मनु की सामाजिक व्यवस्था में इस विचार को गम्भीरता से लिया गया है। जन्मना सब एक हैं, बंटेगे तो गुण कर्म के विभाग से। आज भी हम गुण कर्म के विभाग से जज को जज कहते हैं, इन्जीनियर को इन्जीनियर ही कहते हैं। जरूरी नहीं कि उनके बेटों अथवा वंशजों को भी इसी नाम सम्मान से पुकारा जाये। समय के साथ यदि भ्रांतिवश कोई पद का जन्मना व्यवहार करने लगे। शास्त्री का पुत्र पिता के पद को जन्मना व्यवहार में लेने लगे, तो क्या इसके लिये व्यवस्था को देने वाला दोषी करार दिया जावेगा ? कल्पना करें रसोई को सरल एवं सुव्यवस्थित करने के लिये एक व्यक्ति ने चाकू का आविष्कार किया। सब को बहुत पसन्द आया। सबने रसोई में चाकू का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ

समय उपरान्त एक व्यक्ति ने चाकू से कत्ल कर दिया। आप चाकू बनाने वाले को अपराधी मानेंगे अथवा जिसने उसका दुरूपयोग किया है, उसे दण्डित करना चाहेंगे? मनु की व्यवस्थाओं का दुरूपयोग अपराधपूर्वक करने वाले लोगों ने मनु को दण्डित करना चाहा है। मनु की व्यवस्था से हटकर हमारे पास फिर नेता, थाना और वकील ही शेष रह जाते हैं। मनुवादी तथा मनुद्रोही दोनो को गम्भीरता पूर्वक देश, जाति एवं मानवता के हित में विचार करना चाहिये।

गृहस्थधर्म को समय के साथ त्यागकर मानव समाज को सुव्यवस्थित करने की मनु की कल्पना अद्वितीय है। वानप्रस्थ धर्म में आत्मा की भांति इच्छारहित होकर जीना, प्राणीमात्र की आत्मसमर्पित सेवा, आत्मा के घ्यान चिन्तन तप के साथ ही विश्वात्मा बनकर जीने की सामर्थ्य को प्राप्त होना, जीवन की सार्थकता, सिद्धि, विजयश्री के साथ ही अमर अनन्त आत्मा के धर्म में उत्तीर्ण होकर परम पद पाना ही है। देश, जाति, मानवता के लिये अमर उदाहरण बनने का पुन्य भी है।

वानप्रस्थधर्म के १२ वर्ष तप लेने के उपरान्त एक वर्ष का अज्ञातवास, मेरा मुझसे और सबसे ! एकान्त में तौलना होगा अपनी सामर्थ्य और साहस को। क्या सचमुच मनसा वाचा कर्मणा मैं अपनी आत्मा की प्रतिमूर्ति, प्रतिकृति एवं सामर्थ्य बन पाया हूं ? कोई इच्छा, अतृप्ति, भेद मुझमें बाकी तो नहीं है ? मेरे ढलने में कोई कसर अथवा कमी कहीं अनजाने में रह तो नहीं गई ? मेरा मन एकान्गी और नित्य होकर आत्मा में अनन्त व्याप्त हुआ अथवा नहीं ? कोई विचार, चाहत अथवा किसी की याद सता तो नहीं रही ?

यह सबकुछ ऐसा ही है जैसे स्पेसशिप के छूटने के पहले की उलटी गिनती। वहां अंक लगभग सौ तक है तो यहां अंक ३६५ दिन तक है। एक बार छूट कर आकाश में जाने के उपरान्त फिर लौटकर छूट गई कमी को दुरूस्त करना सम्भव नहीं होगा। एक ही भूल सारे अभियान की विफलता का कारण हो जायेगी। जन्म जन्म फिर से भटकना पड़ेगा। वह

सीढ़ी जो उठती है आकाश पर, कदम के आगे बढ़ते ही पिछली पायदान लुप्त हो जाती है। एक कदम भी पीछे नहीं हट सकेगा योगी !

व्यर्थ होते एक सम्पूर्ण मानव जीवन की सार्थकता को खोजता वर्णाश्रम धर्म ! अपने होने के कारण एवं रहस्यों को जानकर जीवनजयी कल्पनाओं में सुखद जीवन के साथ ईश्वर की सत्ता बनकर जीने का अदम्य साहस ! स्वयं को कुरेदता, स्वयं में सत्ता को पाता, स्वयं सत्ता बन अपनी सेवाओं से धरती को स्वर्ग बनाता और विजेता बन चल देता अनन्त की राह पर ! धरती की ध्वजा फहराती क्षीरसागर में ! कौन होगा फिर कोई दूसरा मनु !

अज्ञातवास के पूरे होते ही उसे अगली कक्षा में प्रवेश करना होगा। अगली कक्षा है सन्यास। 'स' अक्षर का अर्थ है – जीव, ज्योति ! न्यास का अर्थ है – निमित्त वरण !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• संन्यास !

सन्यास वर्णाश्रम धर्म का अंतिम पढ़ाव है। एक तपे हुए, परिपक्व, नियम संयम एवं समर्पण की पवित्र यज्ञस्थली से ऊपर उठता एक दिव्य ज्योतिपुंज ! सूरज की परम्परा का धरती पर चलन ! भगवान श्रीराम चन्द्र ने सरयु में प्रवेश कर सन्यास का वरण किया। परम्परा को उन्होंने अपना अनुमोदन प्रदान किया। श्रीराम का अनुसरण त्रेतायुग से लेकर अनन्त युगों ने किया। द्वापर के अवतार श्रीकृष्ण चन्द्र ने देविका के तट पर (वर्तमान में वेरावल के पास) सन्यास का वरण कर सन्यास धर्म को धन्य किया। बड़ों का अनुसरण करके समाज धन्य होता है।

मैंने प्रकृति में छोटे से बड़े तक, कीट आदि तथा बड़े जीव एवं जन्तुओं में एक विलक्षण प्रतिभा देखी है। वे अपनी जाति के विस्तार पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं। जीवन को भोजन तथा पर्यावरण के अनुरूप सन्तुलित रखने में वे अपने बड़े हुए कमजोर साथियों को मारकर अथवा खाकर अपनी संख्या का अनुपात बनाये रखते हैं। मनुष्य यूं तो सबसे ज्यादा समझदार और समुन्नत जीव है, परन्तु जनसंख्या को संतुलित करने के उपाय ठीक से कर नहीं पाया है। लाला की तोंद की भांति हर ओर झूल लटक ही रहा है। इस कला में वह साधारण कीट से भी पिछड़ा हुआ है। पर्यावरण की चिन्ता सर्वाधिक मनुष्य को ही है। एक ही जीव है जिसने पर्यावरण को सर्वाधिक आतंकित, मैला और विस्फोटक बनाया हुआ है। यह जीव और कोई नहीं, मनुष्य ही है।

ऐसा नहीं कि मनुष्य सदा से ऐसा ही था। जी नहीं ! उसने स्वयं को वर्णाश्रम धर्म के द्वारा सीमित तो कर ही रखा था, साथ ही पर्यावरण की सशक्त सुरक्षा एवं सेवा के व्यापक आयोजन भी कर रखे थे। धर्म का मूल ग्रन्थ प्रकृति है। नाना योनियां इसके नाना अध्याय अथवा पाठयक्रम हैं। मनुष्य की योनि इम्तहान की घड़ी है। जीव छात्र है तथा आत्मा परीक्षक। परिरिस्थितियों का प्रश्नपत्र तथा जीवन की उत्तर पुस्तिका। उत्तीर्ण हो तो

अनन्त के राही बनो। अनुत्तीर्ण होने की अवस्था में ८४ लाख योनियों के भटकाव। पर्यावरण का प्रत्येक अंग तुम्हारा घर परिवार है।

ग्रह केवल मनुष्य की सम्पत्ति नहीं हो सकता। इस पर जीव मात्र का बराबर से अधिकार है। मनुष्य अपने हित में यदि इस पर एकाधिकार कायम करना चाहेगा तो इस प्रकृति का सर्वाधिक भीषण अपराधी होगा। प्रकृति की परिभाषा एवं तुलना में वह कैंसर का परजीवी ही कहा जावेगा। कटते जंगल, फैलती मानव बस्तियां, वन्य जीवों की निर्मम हत्यायें, उनकी प्रजातियों का समूल विनाश जब मनुष्य के द्वारा हो रहा हो तो कुदरत भी तो कह सकती है – आदमी धरती का कोढ़ अथवा कैंसर हो गया है। मनु ने मनुष्य को आत्मपरक जीवन देकर कुदरत का कलंक बनने से बचाना चाहा है। उसे प्रकृति की अनुपम सेवा और प्राणीमात्र के सुखद भविष्य एवं स्थायित्व के लिये सन्यास जैसा अमृत मार्ग, उसकी जीवन पूर्णता के हित में दिया है।

शिशु की सहज, स्वाभाविक स्थिति तभी है जब वह अपनी माता की गोद में है। अन्यत्र सहज रह पाना आसान नहीं है। मेरा शरीर सचराचर की धरोहर है। पर्यावरण ही इसकी मां है। शरीर मुझे सचराचर ने प्रदान किया है। माता को उसकी सन्तान से अलग करने से दोनो असहज हो जायेंगे।

मुझे उसके पुत्र (शरीर) को उसे अर्पित करना ही होगा। माता को उसका पुत्र धर्मपूर्वक लौटाकर, उसके कर्ज से मुक्त होकर मुझे (जीवात्मा) अपने पिता (परमात्मा) से मिलने अनन्त की राह लेनी होगी। इसी का नाम सन्यास है। जो ऐसा नहीं कर पायेगा उसे दूसरे मार्ग पितृयान से जाना होगा। उसे पर्यावरण की अदालत में प्रस्तुत होना पड़ेगा। उसे कर्ज और सूद की वसूली के लिये पर्यावरण के नाना दण्ड नाना पतित योनियों में नाना नर्क में भोगने होंगे।

दो रास्ते हैं। एक सकाम मार्ग है, जिसका पितृयान है, इसे ही धूम्रमार्ग कहा गया है। चिता की लकड़ियों पर गमन होता है इसमें और जाता हूं मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने नाना योनियों में। दूसरा शुक्लमार्ग है जिसका देवयान है, इसमें पीछे लौटने की गति नहीं है। इस मार्ग के पांच पढ़ाव हैं। इसको संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे।

१ – तत्तवमसि ! तत् त्वम् असि ! वह तुम हो । जाना मैंने ! पहचाना मैंने ! अपनी ही आत्मा का स्वरूप तुम्हें देता चला गया। बनाकर शरीर जैसा कमरा, सिर के जैसा गुम्बद लगाकर, बालों के जूड़े सा कलश सजाकर, आत्मा जैसी मूरत प्राण प्रतिष्ठित कर तुम्हारी, बनाया घर तुम्हारा। नाम दिया देवालय, मन्दिर ! घर तुम्हारा, प्रतिबिम्ब मेरा ! फिर जाना मैंने तुम्हीं सम्पूर्ण सचराचर के कर्त्ता कारण हो ! तुम्हीं आदि, मध्य, अन्त और अनन्त हो ! तुम्हीं धारक, सृजक, संहारक और मोक्षदाता हो ! वह तुम हो ! तत्तवमसि !!

२ – तेजोऽसि ! तेजः असि ! तेज हो तुम, तुम्हीं मात्र तेज हो। धारणा के सांचे में (तत्तवमसि) ध्यान के मार्ग (तेजोऽसि) से मैं ढूंढने चला तुमको, मूंद के आंख, खोजता तुम्हें भीतर अपने ! अन्तरतम गहराईयों में पाता तुम्हें ! तेज हो तुम तेज हो! भले प्रकाशित हों सहस्त्रों सूरज, मुर्दा आंखों को रौशनी कहां ? तेरे ही तेज से देख सकीं यह आंखें, युग से युग तक ! तेरे ही तेज से भस्मी के अम्बार, बारम्बार, लौट सके जीवन के कोलाहल में ! तेजोऽसि ! तेजोऽसि !!

३ – एकोब्रम्हद्वितीयोनास्ति ! एकः ब्रम्ह द्वितीय ना अस्ति ! एक तू ही है। बस तू ही है। और न कोई। धारणा (तत्तवमसि) के सांचं में, ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, जाना तुझे, पहचाना तुझे ! फिर खुली आंख ! देखा चहुं ओर ! तू ही तू है, तू ही तू है ! जला दीं सब भ्रांतियों की चित्तायें ! एक चित्ता में स्वयं को जलाकर, बैठ गया हूं, सम्मुख तुम्हारे ! तू ही तू है, तू ही तू है ! एकोब्रम्हद्वितीयोनास्ति !

सन्यास में वानप्रस्थी को सबकी चित्ता जलानी पड़ती है। सम्पूर्ण भौतिकता तथा सम्बन्धों की चित्ता जलाने के उपरान्त सन्यास में वानप्रस्थी को सब सम्बन्धों की चित्ता जलानी पड़ती है। यथा माता पिता, बहन भाई, पत्नी सन्तान, सम्पूर्ण भौतिकता तथा सम्बन्धों की चित्ता जलाने के उपरान्त उसे अपनी चित्ता भी जलानी होती है। अतीत का वह व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण उपलब्धियों, इच्छाओं, चाहत, स्मृतियों, सम्बन्धों के साथ, आज भस्म हो रहा है। वह व्यक्ति मैं कदापि नहीं हूं। मेरा जन्म यज्ञ की ज्वालाओं से हुआ है। यज्ञाग्नियां ही मेरी मॉ हैं। आत्मा ही मेरा पिता है। अग्नियों में ही मुझे निरन्तर तपते रहना है। अग्नि बन सारे सचराचर को आत्मा की रौशनी से वरद करूंगा। आत्मा पिता का रूप बनकर ही शेष जीवन जीना है मुझे। आत्मा की भांति सम्पूर्ण सचराचर की निष्काम आत्म समर्पित सेवा करूंगा। आत्मा की भांति ही सबसे अभेद भाव से व्यवहार करूंगा। स्त्री और पुरूष में अभेद रूप से एक आत्मा का ही भान करूंगा। स्त्री अथवा पुरूष में, गरीब अथवा अमीर में, जाति कुल अथवा धर्म में, एक आत्मा का ही भाव रखूंगा। ऊंच अथवा नीच का भेद नहीं करूंगा। पशु में, पक्षी में, जीव जन्तुओं में एक आत्मा का भाव रखूंगा। जलचर, थलचर अथवा नभचर में एक आत्मा का भाव करूंगा। प्राणीमात्र का सेवक बनूंगा। भक्त का भी भक्त बनूंगा।

४ – अहंब्रम्हास्मि ! अहम् ब्रम्ह अस्मि ! मैं ही ब्रम्ह (आत्मा) हूँ ! धारणा(तत्त्वमसि) के पवित्र सांचे में ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, नथकर दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाला नाग कालिया, होकर आत्म समाधिस्थ (एकोब्रम्हद्वितीयांनास्ति) मैं करने लगा तन (शरीर) रूपी सामिग्री को आत्म ज्वाला में यज्ञ, अर्पण ! होकर यज्ञ तन रूपी सामिग्री ब्रम्ह ज्वाला में, आराध्य (आत्मा) रूपी सांचे में ढलने लगी, सिमटने लगी ! मेरे ही शरीर में पुत्र रूप में मैं जन्मने लगा ! तब जाना मैंने, मैं ही ज्वाला रूप माता हूँ ! मैं ही तन रूप सामिग्री हूँ। मैं ही आत्मा रूप पिता हूँ।

यज्ञ होकर तन रूपी सामिग्री आत्म ज्वाला में, लौटती हिरण्य (स्वर्णिम) धाराओं में, धारणा के पुष्ट सांचे में ढलने लगी है, जन्मने लगी है। अपने

ही शरीर में मैं पुत्र रूप जन्मने लगा हूँ ! मैं ही माता हूँ, मैं ही पिता हूँ, मैं ही जन्मता पुत्र हूँ ! तन सामिग्री को आत्मज्वालाओं में यज्ञ करने वाला यज्ञकर्त्ता भी मैं ही हूँ ! अहंब्रम्हास्मि !

धारणा से ध्यान – ध्यान से समाधि – समाधि से यज्ञ और – यज्ञ से योग ! मानव की आकाशजयी कल्पना !

५ – सोहँ ! सोहँऽस्मि ! वह मैं हूँ ! So am I ! यहां पर एक अण्डे का उदाहरण लेंगे। तुमने देखा अण्डे का जल, धारणा (तत्तवमसि) के सांचे में, ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, समाधिस्थ (ऐकोब्रम्ह द्वितीयोनास्ति) होता, धीरे धीरे चूज़े (बच्चे) का रूप धारण कर लेता है (अहंब्रम्हास्मि)। हो जाता है जब बच्चा पूर्ण, तो एक दिन अण्ड के कपाल को फाड़कर निकलता है बाहर, देखता है चहुं ओर, और सोहँ का नाद करता उड़ जाता है नई अनजानी राह पर !

ठीक इसी प्रकार, धारणा के सांचे में, ध्यान के मार्ग से, नथकर दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाला नाग कालिया, हो समाधिस्थ, करने लगा था मैं यज्ञ, तन रूपी सामिग्री को आत्म ज्वालाओं में ! होकर यज्ञ तन सामिग्री आत्म ज्वाला में, धारणा (आराध्य, आत्मा, मूर्ति) के सांचे में ढलने जमने लगी थी। भजता रहा था जिन्हें आराध्य रूप में कल तक, आज उसी सांचे में ढल तद्‌रूप जन्म ले रहा हूँ मैं। हो गया जब रूप पूर्ण मेरा ! ढल गया जब मैं अपने ही आराध्य के सांचे में ! तो एक दिन अण्ड (ब्रम्ह + अण्ड – ब्रम्हाण्ड) रूपी कपाल को फाड़ हुआ बाहर ! सोहँ का नाद करता अनन्त में विलीन हो गया, खिलौना खिलाड़ी हुआ, उपासक – उपास्य हो गया ! चल दिया अनन्त की अनजानी राह पर ! सोहंऽस्मि ! सोहंऽस्मि !! 'शुक्ल कृष्णे गतीहयेते जगताशाश्वते मते.....गीता

दो रास्ते हैं। चाहे तो अण्डे के खोल में ही सड़ जा अथवा ज्योतियों के पंख लगा, आराध्य का रूप ले, उड़ चल अनन्त की राह में ! एक नपुंसक जिन्दगी है तो दूसरी सृष्टी एवं उत्पत्ति की जगमग !

मनु की व्यवस्था जैसी विषद कल्पना हमें और कहीं पर भी नहीं मिलती है। मनु की प्रत्येक कल्पना में सृष्टी का मूल सूत्र दूर क्षीर सागर में कहीं समाया हुआ है। अपने इसी विचार को व्यवस्थाओं में मनु बारम्बार दुहराता सा लगता है। मनु की इसी कल्पना को सृष्टीवेद अर्थात ज्योर्तिवेद भी जीवन की संरचना में दुहराता हुआ सा लगता है। पृथ्वी पर बालक उत्पन्न नहीं हो सकता। उसे माता के गर्भ का क्षीरसागर चाहिये। क्लोन बनाने में भी हमें गर्भ के क्षीरसागर की जरूरत रहती है। हम इसे नकार नहीं पाये हैं। पेड़ पौधों में भी उत्पत्ति के हित में हमें कहीं न कहीं क्षीरसागर की शरण के बिना काम नहीं चलता। क्षीरसागर (Space) और माया (Gravity) का खेल ही सृष्टी लीला है। दोनो ही सृष्टी के हित में परमावश्यक हैं। महाविष्णु क्षीरसागर में रहते हैं तथा माया उनके चरणों की दासी है। सनातन धर्मग्रन्थों के व्यापक वैज्ञानिक शोध की तथा गहन अध्ययन की जरूरत को अब समझा जाना चाहिये। सब आख्यायें कोरा संयोग मात्र कदापि नहीं हो सकतीं।

दूसरी ओर अर्थात जरा संक्षेप में पितृयान में भी झांकते चलें। देखें मनु वहां क्या रहस्य प्रकट करने वाले हैं। शुक्लमार्ग जिसका देवयान (आत्मयान) है, उसे हमने अति संक्षेप में जानने का प्रयास किया है। अब देखेंगे सकाममार्ग जिसका पितृयान (प्रकृति, पेड़ों की लकड़ियों का यान) है। इस मार्ग में आवागमन है। पराजित होकर दन्डित होने की बात कही गयी है।

हम एक घर में चलते हैं। एक अर्थी सज रही है वहां पर ! कोई घर का मर गया है। घर में सूतक (छूत) वास कर गयी है! घर के मन्दिर बन्द कर दिये गये हैं। अब कोई पवित्र कार्य नहीं हो सकता। तेरहवीं पर्यन्त अर्थात तेरह दिन तक छूत बनी रहेगी। जब उत्पन्न हुआ था तो बारहा दिन का सूतक मनाया गया था। अब इस वर्तमान जन्म के पाप का एक दिन अधिक जुड़ गया उसमें। जन्मकाल का शूद्र, यज्ञोपवीत के संकल्प धारण से द्विज बना, मृत्युकाल में पुनः महाशूद्र हो गया!

मरते ही पांव दक्षिण दिशा में कर दिये गये हैं। क्यों ? उत्तर देवगोल अर्थात आत्मगोल है। दक्षिण यमगोल अर्थात प्रायश्चित की राह है। जब भी सूर्यदेव उत्तरगोल में प्रवेश करते हैं, हम मकर संक्राति का महोत्सव मनाते हैं। इसे खिचड़ी का त्योहार भी कहते हैं। दक्षिणगोल में देवत्व सो जाता है तथा उत्तरगोल में देवत्व जाग उठता है। आदि प्राचीन भारतीय परम्परा है, हम ग्राम के उत्तर में देवालय बनाते हैं तथा ग्राम के दक्षिण में शमशानघाट। कुछ भोले विद्वान इसे मैगनेट के ध्रुवों से जोड़ने लगते हैं। मनु और ज्योतिर्वेद को इससे कुछ लेना देना नहीं है। वहां पर इसकी कल्पना अथवा विचार भी नहीं है।

चार कन्धों पर अर्थी चल दी है शमशानघाट की ओर ! मन दशानन, जीव जानकी को फिर बान्धकर लिये जा रहा है लंका, दक्षिण, शमशानघाट की ओर ! छूट गये हैं जीवन के आत्मक्षण ! श्रीराम !! उत्तर का मन्दिर है अवध मेरा ! दक्षिण का शमशानघाट मेरे जीवन की लंका !! उत्तरायण हो न सका, जीवन को गुरूकुल, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास और फिर अनन्त की यात्रा दे नहीं सका। आसक्त जीवन की भ्रमित देहरी छूट न पायी, छूट गये आत्मा श्रीराम मुझसे ! कन्धों पर होकर सवार आ पहुंचा हूँ शमशानघाट में !

अब इसका क्या हो ? तन रूपी सामिग्री को आत्मज्वाला रूपी यज्ञकुण्ड में, जीवात्मा रूपी यजमान, आत्मा रूपी आचार्य तथा प्राणवायु रूपी उपाचार्य के मार्गदर्शन निर्देश पर यज्ञ करता, अनन्त की राह लेता, परन्तु ऐसा कुछ हो न सका। आत्मा और प्राणवायु देह का परित्याग करके जा चुके हैं। अब जीवात्मा ही खण्डित देह में फंसा हुआ है। अपनी आसक्तियों को छोड़ नही पाया, छूट गया स्वयं आत्मा अनन्त से।

अब इसे सकाममार्ग से धूम्रमार्ग से, पितृयान से भेजो। जिन वनस्पतियों से इसने शरीर उधार में लिया है, उनका ही यान बनाओ। यह अब उन्ही वनस्पतियों रूपी पित्रों के यान में गमन करेगा, देवयान छूट गया इसका। बेटों की तथाकथित आसक्तियों के कारण इसने आत्मा ईश्वर खोया हैं

अब बेटा ही बन यजमान छुड़ाये इसको। बेटा ही चित्ता को अग्नि देगा। अग्नि वह चाण्डाल के घर से मांग कर लायेगा। जिससे उसे यह कभी न भूले कि आत्मा की अग्नि खोने वाला चाण्डाल की आग ही पायेगा। ब्रम्हज्वाला और चाण्डाल अग्नि में से एक को चुनना होगा।

यज्ञ की भांति ही चित्ता को सजाया जायेगा। पूजा, अर्चना एवं परिक्रमा के उपरान्त पुत्र अग्नि देगा। जब उठने लगेंगी लपटें धू धू कर, लड़के को कपाल क्रिया द्वारा जीवात्मा को मृत देह से अलग करने के लिये कहा जायेगा। शरीर ही सामिग्री है, वही जलेगा। जीवात्मा नहीं जलाया जावेगा। जीवात्मा जो वस्तुतः यजमान था, उसे कपाल क्रिया द्वारा पुत्र अलग करेगा। मनु यहां भी जीवात्मा और शरीर को एक नहीं मानता। दोनो को अलग अलग व्यवस्थाओं में गमन कराता है। जीवन पहेली के इस अतिसूक्ष्म रहस्य को अनदेखा करके जीवन के रहस्यों को जानना क्या सम्भव होगा ? मनु स्पष्ट रूप से जीवन को शरीर से नहीं जीवात्मा से ही मानता है। जबकि आधुनिक विज्ञान शरीर को ही जीवन मानता है। शरीर जीवन का रक्षक घर है, जीवन नहीं है। जीवन तो जीवात्मा, आत्मा, प्राणवायु का पूरक वाक्य है। यह एक व्यापक शोध का विषय है। उत्तर भविष्य के गर्भ में समाये हुए हैं।

चित्ता के जल जाने के उपरान्त भस्मी को एक पात्र में इकट्ठा करके घर में रख दिया जाता है। इस पात्र को ढक कर रखते हैं। जो बेटा चिता को अग्नि देता है, उससे घर के लोग भी दूरी रखते हैं। उसे घर के बाहर बराम्दे मे रखते हैं। खाना भी दूर से देते हैं। कारण ? जिसे इसने जलाया है, उसका जीवात्मा अब प्रेत बनकर इसकी देह में अपनी आसक्तियों के कारण वास करेगा। इसकी इन्द्रियों से गीता, गरूड़पुराण, भागवत आदि नाना ग्रन्थों का श्रवण करेगा। प्रायश्चित करेगा, तब कहीं ब्रम्हभोज (दसवें का भोजन) के उपरान्त यथा योनि गमन करेगा।

एक बार फिर मनु का ही विश्वास इन परम्पराओं में धड़क गया है। शरीर भले जल गया है, परन्तु जीवन प्रेतात्मा के रूप में अब भी अस्तित्व में है।

इन्हीं परम्पराओं को मैंने विश्व भर में नाना आदिम जातियों में कुछ हटकर अपभ्रंश रूप में पाया है। वे समय के साथ काफी बदल चुके हैं। उन्होंने नये धर्मों को भी अंगीकार कर लिया है। परन्तु आदि प्राचीन धारणायें उनकी आज भी यथावत हैं। मैंने एक मुखिया से पूछा कि वे अपने लोगों की मृतात्माओं से इतने भयभीत क्यों होते हैं ? रोज इतने जानवर मरते हैं अथवा वे मारकर खाते हैं तो वे उनकी आत्माओं से क्यों नहीं डरते ? उसका उत्तर सुनकर मैं अवाक रह गया। उसने कहा,' आदमी की योनि तथा पशु की योनि में भेद है। आदमी पैदा होता है, परमेश्वर को पाने के लिये। उसकी जिन्दगी की एक मंज़िल है, जिसे पाने के लिये ही उसे मनुष्य की योनि मिली हैं। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है तो वह बुरी जीवात्मा है। उससे सबका डरना स्वाभाविक है। पशु के साथ ऐसा कोई कारण नहीं हैं इसलिये वह सदा अच्छी जीवात्मा है। मरकर भी सबका भला करती है।'

इसी प्रकार के मिलते जुलते उत्तर मुझे लगभग उन सभी आदिम जातियों में मिले हैं, जिन्हें हम सभ्य नहीं मानते हैं। इन जातियों का फैलाव विश्व भर में है। वे एक दूसरे को जानते भी नहीं हैं, फिर भी उनकी आदि प्राचीन मान्यताओं में अदभुत साम्य है। हिमालय पर्वत से फिलीपीन्स के जंगलों तक एक ही धारणा कुछ बदलाव लिये नज़र आती है। आदमी के मरने पर उसकी गुफा का सदा के लिये उसके स्वजन हिमालय में परित्याग कर देते हैं तो फिलीपीन्स में आदमी के मरने पर उसकी सम्पूर्ण झोपड़ी को ही जंलाकर राख कर दिया जाता है।

सभ्य जगत का विज्ञान तथा वैज्ञानिक सोच अभी तक शरीर के कोशों में ही उलझी हुई है। रूह, सोल अथवा जीवात्मा की ओर झांकने को भी तैयार नहीं है। यह स्वयं में आश्चर्यजनक एवं वैज्ञानिक सोच के मापदण्डों के सर्वथा विपरीत है। किसी भी विचार को अस्वीकार करने नकारने के पहले उस पर गम्भीर चिन्तन विचार एवं शोध करना एक मान्य धर्म है। किसी विषय को बिना जाने बिना समझे, अकारण ही उस पर निर्णय कर लेना मूर्खता कही जाती है। सारे विश्व का अतीत, उनके धार्मिक विश्वास

बिना किसी ईमानदार शोध के झुठलाना किसी प्रकार से भी उचित नहीं हो सकता।

जिन्हें हम अन्ध आस्था, अन्ध मान्यता कहते हैं, हम यह क्यों भूल जाते हैं कि अन्ध के अतिरिक्त उनमें आस्था तथा मान्यता शब्द भी हमने जोड़ रखे हैं। हमने भी उन्हें झूठ नहीं कहा है। तब आप बिना किसी व्यापक अनुसन्धान के उन्हें नकारने का दुस्साहस किस प्रकार तथा किस नैतिकता के आधार पर कर सकते हैं ?

ज्योतिर्वेद जिसे सृष्टीवेद कहलाने का सम्मान प्राप्त था, जिसने समय को गणित में बान्धने नापने के महाविज्ञान को प्रकट किया, जिसने ग्रहों की दूरियों को नापने के विज्ञान को सहज एवं व्यापक बनाया, जिसने ग्रहों की मायाओं के नाना प्रभावों को सूक्ष्म एवं सटीक रूप से जानने के महाविज्ञान को प्रकट किया, क्या उसे मात्र अन्ध आस्था कह कर ठुकरा देना उचित होगा ?

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• ब्रम्ह बिन्दुओं की संरचना एवं कार्य प्रणाली !

ब्रम्ह बिन्दु (Atems) की संरचना तथा कार्य प्रणाली की चर्चा ज्योतिर्वेद में मिलती सी परन्तु कुछ भिन्न है। वेद न्युक्लीयस को क्षीरसागर (मायारहित क्षेत्र) के रूप में मानते हैं। न्युट्रान तथा प्रोट्रान को विष्णु एवं लक्ष्मी की संज्ञा प्रदान करते हैं। नर एवं नारी के रूप में ! दोनो ध्रुव क्षीरसागर में अमर हैं। माया यहां प्रवेश नहीं कर सकती। इनके चहुं ओर देव, यक्ष, गन्धर्व की भांति शक्तिपुंज निरन्तर इनकी परिक्रमा करते रहते हैं। इन्हें सम्भवतः आधुनिक विज्ञान एलेक्ट्रान (Electron) की संज्ञा प्रदान करना चाहे ?

इन्हीं अमर बिन्दुओं से सम्पूर्ण सचराचर की सृष्टी होती है। मानव अथवा जीवधारियों के शरीर इन्ही से बने होते हैं। ज्योतिर्वेद के अनुसार यह ब्रम्ह बिन्दु समान हैं अर्थात इनमें भिन्नता नहीं है। माया के प्रभावों को निरस्त्र करने के लिये यह अपने चहुं ओर इच्छानुसार एलेक्ट्रान उत्पन्न करने की क्षमता इनमें है। जैसे जैसे माया का प्रभाव बढ़ता जाता है तथा माया ब्रम्हबिन्दु के क्षीरसागर को आतंकित करने लगती है, ब्रम्हबिन्दु अपने क्षीरसागर का विस्तार करने के साथ ही परिक्रमा करते ज्योतिपुंजों में विस्तार करने लगता है। यह ज्योतिपुंज माया से घर्षण करते परमाणविक ऊर्जा को उत्पन्न करते हैं। इसप्रकार यह ब्रम्हबिन्दु अपनी अमरता को अक्षुण रखते प्रलय का रूप धारण करते हैं। श्रीमद्‌भगवतगीता में अपने विराट दर्शन में भी श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया है कि एक ब्रम्हबिन्दु एक पृथ्वी जैसे ग्रह का विनाश करने में समर्थ है। एक ही ब्रम्हबिन्दु माया से संघर्षरत होकर अपनं स्वरूप को पृथ्वी से भी कहीं अधिक विस्तृत करता, सम्पूर्ण ग्रह को सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं में परिणित कर सकने में समर्थ है।

यह सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु अविभाज्य हैं, अमर हैं। ऊर्जा माया से संघर्ष का परिणाम है। इस प्रकार यह सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु ऊर्जा का अनन्त अक्षय भन्डार है। इन्हीं से सम्पूर्ण सचराचर निर्मित होता है तथा प्रलय द्वारा पुनः इसी में लय हो जाता है। रूप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु बीज का नाश नहीं होता है। रूप नाशवान हैं बीज अमर है। रूप जब भी विनाश को प्राप्त होता है, उसका विर्सजन सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं में हो जाता है। इन्हीं ब्रम्हबिन्दुओं का पुनः नये रूप में सृजन आत्मा द्वारा होता है। शरीर मृत्यु पर भस्मी बन जाता है, चित्ता की आग में। भस्मी पुनः यज्ञ के द्वारा अन्नादिक में लौट जाती है। अन्न भोजन के रूप में शरीर में यज्ञ होता रक्त, मांस, मज्जा में परिणित होता, गर्भ में शिशु के रूप में पुनः जन्म धारण करता है। गर्भ में पांच मास पर्यन्त नवजात शिशु मात्र एक पिण्ड के रूप में ही विकसित होता रहता है। उसमें जीवन की कल्पना नहीं होती। इस समय के उपरान्त ही जीवात्मा का उस पिण्ड में प्रवेश होता है। इसी के उपरान्त गोद भराई की रस्म होती है। यह जीवात्मा के पिण्ड में स्थापित होने का उत्सव है। आदि प्राचीन काल से यह परम्परा नियमपूर्वक मनायी जाती है। ऐसा सब कहीं होता है। गर्भ में जीवात्मा का ही प्रवेश होता है। जब बालक की देह जन्म धारण कर गर्भ के क्षीरसागर का परित्याग कर माया में प्रवेश करती है, अर्थात भौतिक जगत में उसका जन्म होता है, तब आत्मा इस शरीर में प्रवेश करता है। यही क्षण ज्योतिषी के लिये महत्वपूर्ण होता है। महाभारत के समरागण में नये महारथी (जीवात्मा) का रथ (शरीर) तथा सारथि (आत्मा) सहित प्रवेश !

जीवन के महाभारत के प्रथम क्षण को ही ज्योतिष में इष्टकाल के रूप में ग्रहण करते हैं। जिस क्षण बालक का सिर दिखायी पड़े, वही क्षण शुद्ध रूप इष्टकाल है। माया बहुत ही निष्ठुर है, जन्म से ही मृत्यु का संग्राम आरम्भ कर देती है। मायाओं का महासमर गर्भ के बाहर आते ही आरम्भ हो जाता है। माया (Gravities of different planets) नाना ग्रहों की पृथ्वी माया सहित जीवन का परीक्षण आरम्भ कर देती है। माया जीतेगी तो नवजात शिशु की इहलीला समाप्त हो जावेगी। आत्मा श्रीकृष्ण शरीर रूपी रथ की रक्षा जीव रूपी अर्जुन सहित करेंगे। इस-युद्ध को प्रत्यक्षतः

तो जीव रूपी अर्जुन को ही लड़ना है, परन्तु परोक्ष में आत्मा रूपी श्रीकृष्ण ही निरन्तर लड़ते हैं। जीव न तो शरीर रूपी रथ का एक कोश बनाना जानता है और न ही एक सांस अथवा एक क्षण जीवन का। फिर भी तमाम उम्र अपने को ही विधाता मानकर दम्भ और मिथ्याभिमान से सड़ी जिन्दगी ही ढोया करता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया भी था,'• निमित्त मात्र है, तू हे अर्जुन ! ये सारे योद्धा तो मेरे द्वारा मारे जा रहे हैं।' परन्तु यह जीव रूपी अर्जुन जानकर भी अनजान बना रहना चाहता है। न तो शरीर का एक कोश ही बना पाया और न ही जीवन का एक अक्षर ही पढ़ पाया। फिर भी आत्मा के कृतत्व पर अपने झूठे दम्भ की मोहर लगाकर स्वयं को अज्ञान के अन्धेरे ही जीने पर मज़बूर करता रहता है। शायद अपनी हीन भावनाओं से बचने के लिये ?

प्रत्येक कोश मेरा शरीर का, बनके सैनिक माया से निरन्तर युद्ध कर रहा है, रक्त का प्रत्येक कण एक योद्धा है। माया शरीर के प्रत्येक कोश को तोड़कर जीव को पराजित करना चाहती है। सारे महारथियों को परास्त कर पांच तत्व से बने शरीर पान्डु तथा पाण्डवों को हार का स्वाद चखाना चाहती है। श्रीकृष्ण शरीर की रक्षा तेजस. (Human aura) से करते हैं। दस इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान रूपी बुद्धि अर्जुन को प्रत्यक्ष रूप में युद्ध करते हुए शरीर रूपी रथ तथा सारथि रूपी आत्मा का भी ध्यान रखना होगा। प्रत्यक्ष रूप से अर्जुन (जीवात्मा) ही युद्ध कर रहा है। अप्रत्यक्ष रूप में आत्मा ही युद्ध में अर्जुन के हित में सबकुछ कर रहा है। अर्जुन यहां पर निमित्त मात्र है। इसी को महाभारत युद्ध में तथा महाभारत महाकाव्य में लीलात्मक रूप से दर्शाया गया है। महाभारत महाकाव्य के १८ पर्व हैं। युद्ध भी १८ दिन ही लड़ा गया था। श्रीमद्भगवतगीता के १८ अध्याय हैं। यह कोरा संयोग नही हो सकता। वानप्रस्थ से सन्यास के त्याग, वरण, चित्ताग्नि, यज्ञ हवन तथा जल प्रवेश के कार्यक्रम के दिन भी १८ ही हैं। सन्यास के उपरान्त मन्त्र के रूप में ईशावास्य उपनिषद ही दिया जाता है, मार्गदर्शक के रूप में। ईशावास्य उपनिषद वस्तुतः यजुर्वेद का ४० वां अन्तिम अध्याय है। इसमें भी १८ ही ऋचाएं हैं। यजुर्वेद कर्मकाण्ड एवं सन्यास का वेद है। योग का अमृत ग्रन्थ है। यजन एवं

योग की राह है इसमें। १८ ऋचाओं में मोक्ष के द्वार को सन्यासी के लिये प्रकट किया गया है।

जिन सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं से मानव का सम्पूर्ण शरीर बना हुआ है। वे अमर हैं। मृत्यु में देह का अन्त होता है। प्रत्येक बिन्दु स्वयं में पूर्ण है। शक्ति, सामर्थ्य, सृजन में तथा अपनी स्पष्ट सोच में। जब वे शरीर में संकल्पित होते हैं, तो वे दो छोरों पर अनुशासित रहते हैं। एक छोर पर जीवात्मा से अनुशासित हैं, तो दूसरे छोर पर आत्मा से पूर्ण रूपेण अनुशासित रहते हैं। ऐसी अवस्था में वे अपनी अलग कोई विचारधारा नहीं रखते। शरीर के न रहने पर ये पूर्ण स्वतन्त्र हो जाते हैं। जब तक इन्हें दूसरा बन्धन नहीं मिलता ये स्वतन्त्र विचरण करते स्वेच्छाचारी होते हैं।

इनके स्वरूप भी इनके विचारों के प्रभाव के अनुरूप बदलते ढलते रहते हैं। आप इन्हें छलिया अथवा मायावी भी कह सकते हैं। शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव अथवा सोच से जैसे व्यक्ति के चेहरे पर बदलाव आता है, उसका मूल कारण ये ही हैं। इसे ऋग्वेद में कई उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है। प्रत्येक जीवधारी की देह में इनके रूप, उसकी सोच समझ और मान्यताओं के अनुरूप सहज ही होते हैं, तथा विचार के साथ ही तत्क्षण बदलने की इनमें अदभुत शक्ति होती है। सबसे पहले इनके रूप बदलते हैं, फिर इनसे बने शरीर के अवयवों में बदलाव आता है। इस प्रकार मन के भाव चेहरे पर स्पष्ट हो जाते हैं। ये ही सृष्टी का मूल हैं। इनको जाने बिना सृष्टी के रहस्यों को स्पष्ट कर पाना नितान्त असम्भव है। कोश, एमीबा, बैक्टीरिया, डी. एन. ए. आदि अत्याधिक स्थूल इकाईयां हैं। वेद और ऋषि इन सूक्ष्म तत्वों के विज्ञान से जुड़े हुए हैं। इन्हीं सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं से ही आकाश तथा सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र एवं आकाशगंगाओं की संरचना होती है। अलग अलग व्यवस्थाओं में यह सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु अपने स्वरूप को यथा ढालने में सर्व समर्थ हैं। अति तीव्रता से यह अपने स्वरूप, आकार, विस्तार, सामर्थ्य एवं कृतत्व को यथा स्थिति बदल लेते हैं। इनके अलग स्वरूपों से इनकी अलग गणना करना भ्रम है। यह एक ही हैं। एको ब्रम्ह द्वितीयोनास्ति!

यह ब्रम्ह जब माया में रहते हैं तो इनका स्वरूप माया के प्रभाव के अनुपात में ही होता है। माया को निष्प्रभावी बनाने के लिये यह अपने चहुं ओर शक्ति चक्र का निमार्ण किये रहते हैं, जिससे माया इनके क्षीरसागर तक पहुंच कर इनकी अमरता को चुनौती न दे सके। क्षीरसागर में प्रवेश करने पर इनके शक्ति चक्र क्षीण तथा उपरान्त में लुप्त होने लगते हैं। यह इनकी सुशुप्तावस्था कही गई है। इसी अवस्था में यह आपस में जुड़ने लगते हैं। इनके जुड़ाव से तत्त्व (Matter) की उत्पति होती है। इन्हीं से नाना धातुओं तथा भौतिक पदार्थों की सृष्टी होती है। ऐसा होना क्षीरसागर में ही सम्भव है। इसीलिये कल्पवृक्ष उल्टा है। जड़ें ऊपर अर्थात आकाश की ओर हैं तथा शाखायें नीचे की ओर अर्थात धरती पर हैं। सृजन की प्रक्रिया केवल क्षीरसागर में ही सम्भव है। यह क्षीरसागर नीला आकाश अथवा किसी जीवधारी के शरीर के भीतर का क्षीरसागर हो सकता है। सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं का जुड़ाव मायारहित क्षीरसागर में इनकी सुशुप्तावस्था में ही सम्भव है। इसीलिये यह किसी भी पदार्थ अथवा धातु में सुशुप्तावस्था में ही रहते हैं। माया का प्रभाव आते ही ये उग्र तथा विध्वंसक हो उठते हैं। सुशुप्तावस्था के जुड़ाव में भी यह मर्यादित रहते हैं। यह आपस में जुड़ते नहीं हैं। इनके बीच में क्षीरसागर की मर्यादा सदा बनी रहती है। यह जहां अपने भीतर क्षीरसागर रखते हैं, वहीं इनके बाहर चहुं ओर क्षीरसागर की अनन्त कल्पना विद्यमान रहती है। किसी भी धातु में यह सूक्ष्म बिन्दु क्षीरसागर की मर्यादा के बिना जुड़ते नहीं हैं। इनका जुड़ाव वस्तुतः आकर्षण द्वारा ही होता है। जब भी माया इनके आकर्षण के मध्य प्रवेश करने का प्रयास करती है, यह बिन्दु विध्वंसक हो उठते हैं। इससे धातु अथवा पदार्थ टूटने बिखरने लगते हैं। छूट कर अलग हो गये सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु संघर्ष करते हुये नये क्षीरसागर की खोज में लग जाते हैं। उन्हें क्षीरसागर पेड़ पौधों अथवा जीवधारियों के शरीर में मिल सकता है, अन्यथा उन्हें ग्रह की माया का परित्याग कर आकाश के क्षीरसागर में शरण लेनी पड़ती है।

आकाश में छिटक कर गये सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु सुशुप्तावस्था को प्राप्त होकर नये समीकरणों में बन्धने लगते हैं। ये नन्हीं गोलियों में जुड़कर आकाश

में विचरने लगते हैं। धीरे धीरे इनके स्वरूप नन्हीं उल्काओं का रूप ग्रहण करने लगती हैं। समय के अन्तरालों में यही महा उल्का पिण्डों का रूप ग्रहण करते हैं। यह प्रक्रिया लगभग ऐसी है, जैसे माता के गर्भ में बालक निर्माण अथवा पेड़ के गर्भ में फलादि का सृजन !

ये महा उल्का पिण्ड ही ग्रह के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। ऐसा कदापि नहीं है कि सूर्य से टुकड़े अलग होकर पृथ्वी अथवा चन्द्रमा बन जांये। सभी ग्रह प्रकृति के नियमो के अनुसार ही उत्पन्न होते तथा प्रलय को प्राप्त होते हैं। दुर्घटना से बच्चे नहीं बनते, ना ही शरीर को काट कर उसके टुकड़ों से बच्चे बनाना सम्भव है। ग्रहों की क्षीरसागर में हिरण्य गर्भ में बनने की चर्चा लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। कहीं कहीं पर इनके निर्माण की प्रक्रिया की चर्चा भी हुई है। इसकी चर्चा में पूर्व के ग्रन्थ 'सनातन दर्शन के नौ अध्याय' पुस्तक में कर चुका हूं।

इन ग्रहों के अन्त के दो मार्ग हैं। रूद्रवलय (Cosmic Arc) को धारण कर सूर्य की भांति अनन्तायु हों अथवा धूम्रकेतु बन महाप्रलय को चले जावें। इसकी चर्चा श्रीमद्भगवतगीता में है।

- **शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।**
- **एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।८/२६।।**

शुक्ल एवं कृष्ण, इस शाश्वत सचराचर की दो गतियां हैं। एक मार्ग में अनावृति अर्थात आवागमन नहीं है। अन्य अर्थात दूसरे मार्ग में पुनरागमन है। यह ज्योतिर्वेद का सिद्धान्त सूत्र है। अटल, अपरिवर्तनीय, ब्रम्हाण्ड व्यापी एवं सर्वव्यापी नियम ही सिद्धान्त सूत्र का सम्मान पाते हैं। इसकी विस्तार सहित चर्चा हम पूर्व ग्रन्थों में भी कर चुके हैं। अभी तो संक्षिप्त परिचय ही प्राप्त कर रहे हैं। इसका विस्तार यथा समय तर्क प्रमाण एवं साख्यों सहित करेंगे।

सूर्य को लेकर भी अतीत युगों की मान्यताओं तथा वर्तमान विज्ञान में स्पष्ट भेद है। आधुनिक विज्ञान सूर्य को आग का जलता हुआ गोला मानता है। उनके अनुसार पृथ्वी पर गर्मी सूर्य से आती है। वे मानते हैं कि सूर्य कभी ठन्डा पड़ जायेगा तो धरती पर लोग ठन्ड से मर जायेंगे।

प्राचीन मान्यतायें इसे एक सिरे से अस्वीकार करती हैं। उनके अनुसार सूर्य जो दिखता है, वह सूर्य नहीं है। सूर्य के चारों ओर, सूर्य से लगभग बीस लाख मील दूर, एक रूद्र वलय है। हम इस वलय को भ्रांतिवश सूर्य मान बैठते हैं। द्यावा पृथ्वी (सूर्य ग्रह की धरती का वैदिक नाम) इस वलय के भीतर, तेज चक्र के लगभग बीस लाख मील अन्दर है। हर ओर से तेज चक्र के तीव्र प्रकाश से घिरे रहने के कारण उसे देख पाना सम्भव नहीं है। यह ग्रह शान्त तथा अतीव रमणीय है। स्वर्ग के जैसा मनोहारी है।

इस ग्रह की माया किसी अन्य ग्रह की माया से सन्तुलित नहीं होती। इसका माया का सन्तुलन इसके रूद्रवलय से होता है। इस ग्रह पर माया वलय से नितान्त सन्तुलित है। यहां का जीवन अन्य ग्रहों के जीवन से सर्वथा भिन्न है। कुछ ग्रन्थों में इसे पितृलोक भी कहा गया है। पितरों का ग्रह। विश्व के अन्य प्राचीन धार्मिक मान्यताओं में भी कुछ ऐसी ही चर्चायें मिलती हैं।

रूद्रवलय जहां एक ओर सूर्य से संतुलित है, वहीं इसके अस्तित्व का एक और बड़ा कारण भी है। उल्का पिण्ड, धूम्रकेतु, पुच्छल तारे तथा गैस के बादल ही इसके स्थायित्व का मूल कारण हैं। रूद्रवलय के गहन माया आकर्षण में फंसकर ये वलय में निरन्तर प्रवेश करते हैं। यहां माया की अत्याधिक गहनता के कारण इनकी महाप्रलय हो जाती है। यह सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं में परिणित होते अपने अस्तित्व की लड़ाई में विध्वंसक हो उठते हैं। उग्र विध्वसंक (Aggressive cosmic and radioactive) अवस्था में के सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु तीव्रता से क्षीरसागर की ओर भागते हैं। इन्हीं से किरणों के समूह सूर्य से निकलते दृष्टीगोचर होते हैं।

सूर्य से निकलते किरणों के समूह मार्ग में सूर्य की ओर निरन्तर बढ़ते उल्का पिण्डों तथा गैस के बादलों से टकरा कर अत्याधिक उग्र हो उठते हैं। आप इस दृश्य का अवलोकन पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय कर सकते हैं। अन्यथा भी सूर्य के चहुं ओर तीव्र फैलता तेजस इसका ही कारण है। सूर्य के समीप इसकी जितनी तीव्रता होगी उससे कहीं अधिक सूर्य के मार्ग में मिलेगी।

सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु जब मायारहित क्षीरसागर में प्रवेश पाते हैं तो वे धीरे धीरे शान्त होते सुशुप्तावस्था को चले जाते हैं। इसी अवस्था में यह क्षीरसागर में तेजी से आगे बड़ते रहते हैं। क्षीरसागर में माया न होने के कारण इनकी गति में अन्तर नहीं आता। सम्भवतः प्रत्येक जीवधारी की निद्रा का मूल कारण भी यही है कि जिन सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दुओं से उसकी संरचना हुई है वे निद्रा के सुख को बहुत प्यार करते हैं।

जैसे ही यह सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु किसी ग्रह की माया में प्रवेश पाते हैं, माया इनके अस्तित्व की चुनौती बन जाती है। यह बिन्दु माया के प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिये संघर्षरत हो उठते हैं। इस संघर्ष से गर्मी अथवा ऊर्जा की उत्पति होती है। यह कहना कि सूर्य ने धरती पर गर्मी भेजी, ऐसा सम्भव ही नहीं है। गर्मी क्षीरसागर पार कर ही नहीं सकती। सूर्य से किरणों के रूप में आने वाले सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु ही आते हैं तथा के युद्ध की परिणति ही गर्मी है। सब खेल माया का है। समय आने पर इसका विस्तार करेंगे।

राहू ग्रसित क्षेत्र के रूप में हमें ब्लैकहोल (Black hole) की चर्चा अतीत में भी मिलती है। उनके अनुसार यह कृष्ण छिद्र वस्तुतः भ्रम हैं। जब भी सूक्ष्म ब्रम्हबिन्दु प्रकाश से भी तीव्र गति से किसी दिशा में भाग रहे होते हैं, उसकी विपरीत दिशा में वे काले छिद्र के रूप में दिखते हैं। चूंकि प्रकाश उसी दिशा में भाग रहा होता है, उससे लौटता किसी भी प्रकार का प्रकाश देखने वाले की ओर नहीं जाता तो उसे अन्धेरा अथवा काला

छिद्र ही दिखेगा। अदृश्य होने में भी यही सिद्धान्त कार्यरत होता है। जल में भंवर उठती है। उसमें जो भी जाता है अदृश्य हो जाता है। उसका कारण भी लगभग यही है। भंवर तेजी से खिंचाव द्वारा वस्तु को दूसरे अदृश्य छोर में खींच ले जाती है। यही काले छिद्रों का रहस्य है। क्षीरसागर के भंवर !

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

• सूरज की कहानी है, किरणों का फैलाव !

सूरज की कहानी है मेरी और किरणों का फैलाव है। किरण किरण पढ़ना है हमें और सूरज हमारी मंज़िल है। अतीत के गहन अन्तरालों से वर्तमान तक हमें खोजनी है पहचान हमारी ! बदलती परिस्थितियां समय एवं काल के साथ; बदलती भाषायें, बदलते शब्द और अर्थ उनके ! बदलती धारणायें एवं मान्यतायें, बदलते मानवीय मूल्य और भाव उनके, बदलती सोच एवं विचार की दिशायें! इन बदलते परिवेशों में हमें खोजने हैं सृष्टी के अति गोपनीय रहस्य ! हमारी यात्रा कतई आसान नहीं है। फूंक फूंक के कदम रखने होंगे। साख्य, प्रमाणों को उनके समय में, उन्हीं मान्यताओं एवं परिस्थितियों में तथा मान्य भाषा एवं अर्थों में ग्रहण करना होगा। स्वयं को उन्हीं युगों में मानसिकता सहित ढालना होगा। कल की मान्यताओं को वर्तमान की मान्यताओं में स्पष्ट करने की भारी भूल हम कदापि नहीं करेंगे।

हमें इस खोज में विश्व के अनन्त अतीत के मत मतान्तरों से गुज़रना होगा। हम सावधानीपूर्वक निष्ठासहित उन पर विचार करेंगे, परन्तु कोई भी निर्णय लेने में शीघ्रता भी नहीं करेंगे। हमारे मतभेद हो सकते हैं। हमारे निर्णय प्रभावित होकर हमारी पुरानी आस्थाओं को ठेस भी दे सकते हैं। हम किसी भी दशा में विचलित नहीं होंगे। साथ ही हम अपना निर्णय किसी पर नहीं थोपेंगे।

विश्वविद्यालय का एक छात्र जो किसी पुराण में शोध कर रहा था, गाईड के कहने पर मेरे पास आया। वह जानना चाहता था कि अमुक पुराण में जो अमुक विषय में कहा गया है, क्या वह सही है अथवा नहीं ?

'तुम्हारे लिये न तो वह सही है और न ही गलत !' उसे उत्तर मिला। 'वह कैसे ?' उसने आश्चर्य से पूछा।' जब वह उस पुराण में लिखा है तब

तक तुम्हारे लिये ना तो वह सही है और ना ही गलत ! तुम उसे पढ़ो, पी जाओ, मन्थन करो। जब तुम्हारे भीतर से कोई मंझा हुआ निर्णय बाहर आये वही सही उत्तर होगा। शोध के छात्र भीख में निर्णय दूसरों से नहीं लेते। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना, यह सिर्फ तुम्हारा निर्णय है। किसी पर इसे थोपना मत। प्रत्येक व्यक्ति को अपना सत्य स्वयं खोजना होता है। सत्य ना तो दिया जा सकता है, ना ही लिया जा सकता है। यह भीख में नहीं मिलता, इसे इसी में जीकर, अनुभव करके ही सिद्ध करना होता है। निर्णय प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति है।

बिजली, पंखे को घुमाकर हवा देती है। हीटर उससे गर्मी बनाता है। फ्रिज और कूलर बिजली से ठन्डी हवा लाते हैं। रेडियो और टी.वी. उससे आवाज और चित्र प्रकट करते हैं। अब इन सबकी परिभाषा बिजली की एक तो नहीं हो सकती ? उसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी अपनी सोच और व्याख्या अपनी प्रकृति के परवश करता है। हमें इसे सावधानापूर्वक सबकी आस्थाओं का सम्मान करते हुए शोध करना चाहिये। पंखे के भी अपने कारण हैं तो हीटर भी गलत नहीं है। कूलर और फ्रिज की सोच के भी समान्य कारण हैं। लाखों वर्षो के अन्तरालों तथा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त, समय समय पर बदलते परिवेश के साथ ही आधुनिक विज्ञान एवं खोज का भी हमें सभी प्रकार का विश्लेषण करते हुए, साख्य एवं प्रमाणों को स्पष्ट करना होगा।

हमारी खोज कई खण्डों में होगी। प्रथम खण्ड इसकी भूमिका मात्र है। हम इसे शोध ग्रन्थ का रूप न देकर शोध उपन्यासों की एक नयी शैली प्रदान करेंगे, जिससे साधारण जन भी हमारी खोज के साथी बने तथा विषय को सरलतापूर्वक ग्रहण कर सकें। विश्वविद्यालयों तक सीमित हो गई अथवा चन्द विद्वानों तक सीमित हो गये शोध से जनमानस कटा रहता है। जबकि शोध उपन्यास सभी को साझीदार बनाने में सिद्धहस्त हो सकते हैं। विश्वविद्यालयों के शोध डिग्री तक तथा डिग्री की सीमा नौकरी मिलने तक ही प्रायः रहती है। फिर शोध व्यवहारिक रूप से लुप्त हो जाती है। उसका कोई विशेष प्रयोजन नहीं रह जाता है।

गंगा नदी हिमालय की गोद से निकलकर सारे भारत भू प्रदेश को अमृत पिलाती गंगासागर में व्याप्त हो जाती है। गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक गंगा के दोनो किनारों पर असंख्यों मठ, तीर्थस्थान तथा नाना सम्प्रदायों के धर्मस्थान हैं। गंगा एक है, मठ आदि स्थान अनेक हैं। गंगा, गंगा है और मठ, मठ ही रहेगा। मठ गंगा नहीं हो सकता, गंगा मठ नहीं हो सकती। गंगा धर्म है और मठ सम्प्रदाय है। गंगा सरल है, निर्मल है, सलिल पतितपावनी जीवनदायनी है तथा अभेद भाव से प्राणीमात्र की सेवा करती है। मठ के साथ ऐसा सम्भव नहीं है। उसके भक्त हैं, शिष्य हैं, बड़े एवं छोटे दानदाता हैं। उसके साथ अपने और विरोधी जन का भेद है। जातिवाद, परिवारवाद और सम्प्रदायवाद की सीमायें एवं वर्जनायें जुड़ी हुई हैं। गंगा अभेदभाव से इच्छा रहित भाव से प्राणीमात्र की सेवा समर्पित भाव से करती है। गंगा कुछ कहती भी नहीं है। अपनी बात भी नहीं करती। बस अकिंचन भाव से प्राणीमात्र की सेवा में ही लगी रहती है। उसके हित में बोलते हैं सारे मठ, देवस्थान और तीर्थ ! वे नित्य सुबह और सायं गंगा मैया की आरती उतारते हैं। गंगा ही सनातन धर्म है तथा मठ सम्प्रदायों के समान हैं। सम्प्रदाय धर्म का परिचय दे सकते हैं। धर्म की नाना व्याख्या तो कर सकते हैं, परन्तु गंगा तो नहीं हो सकते। गंगा की भांति बहना तो दूर हिलना भी सम्भव नहीं है। मठ सदा मठ का ही आचरण करेगा। गंगा धर्म की आदि राह बनेगी। धर्म आचरण, व्यवहार, स्वभाव प्रधान ही रहेगा। मठ की सीमा दिखावे को ही महत्व देगी। हमें अपने शोध में धर्म की मूल भावना को भी सही अर्थों में स्पष्ट करना होगा। धर्म का सन्यास गंगा सा बहना है। सम्प्रदाय की आस्था भी गंगा ही हो, जरूरी नहीं है।

आज से कई दशक पूर्व जब लोग लखनऊ में इस सन्यासी को रोक लिये तथा हठपूर्वक रहने के लिये मना लिया। एक छोटा सा आश्रम भी बन गया। फिर सबने कहा कि आश्रम के खर्चे तथा संचालन के लिये चेला और चन्दे की व्यवस्था होनी चाहिये। लगा, कहां आ गये! सबको विनम्रता से समझा दिया कि यह दोनो ही सन्यास धर्म में अनुचित हैं। सन्यासी का धर्म इच्छा रहित तथा भेद रहित प्राणीमात्र की समर्पित

निष्काम सेवा है। उन्हें विश्वास नहीं हुआ था, अब मान गये है। अक्सर जिज्ञासु अजनवी भक्त अतीत के विषय में पूछ बैठते हैं। वे नहीं जानते कि अतीत का चिन्तन भी सन्यासी के लिये महापाप है। उसे वर्तमान आत्मा की भांति जीने के लिये अतीत तथा अतीत से जुड़े सम्पूर्ण भेद जगत को भस्म करना होता है। उसे गंगा की राह लेनी है। अगले खण्ड में हम फिर चलेंगे वहीं जहां प्रकृति और पुरूष ने प्रथम मानव की धरती पर कल्पना की थी।

नारायण हरि! गेविन्द हरि !!

× × ×

Books Published by Nishkaam Peeth Prakashan

(A Publication Division of *"The Times of Astrology"*)

Title of the Books/ Authors/ Price

Title of the Books/ Authors	Rupees	US $
Rajeshwari Shanker		
'The Times Hundred Years' (100) Advanced Ephemeris (2001 A.D.-2100 A.D.)	Rs. 350/-	$ 40
•The Times Daily Ephemeris (2000 A.D.-2010 A.D.)	Rs. 250/-	$ 25
• Your Stars in 2000 AD	Rs. 100/-	$ 15
• Secrets of Lomash Samhita		Underprint
Swami Sanaatan shree		
• Krishna : In The Mirror of Mysteries Revealed	Rs. 70/-	$ 7
• सनातन दर्शन के नौ अध्याय	151 रुपये	$ 21
• साधना विज्ञान	101 रुपये	$ 11
• सरयू के तट	101 रुपये	$ 11
• वेद गंगा	10 रुपये	$ 1
• विनायक बुद्धिमता / अधियज्ञ मित्र / अश्वत्थ मित्र / सीपी के मोती / कर्म परमेश्वर / लव कुश / यज्ञोपवीत / दशरथ मार्ग	प्रत्येक 5 रुपये	$ 1
• गीता दिव्य दर्शन	प्रकाशनाधीन	
• रहस्य लीला जादू और जादूगर	प्रकाशनाधीन	
• सनातन वाणी	प्रकाशनाधीन	
K.K. Pathak		
• Remedial Astrology	Rs. 120 /	$ 20
• Garga Hora Shastra	Rs. 60/-	$ 5
• Bhrigu Sutram	Rs. 30/-	$ 5
• ज्योतिष के दस महत्वपूर्ण अध्याय	50 रुपये	$ 5
• Hindu Dasa System	Rs. 450/-	$ 45
• Astrological Counselling	Rs. 100/-	$ 15
• Mundane Astrology & Monsoon	Underprint	
• Religion and Astrology	Underprint	
• Special Combinations in Astrology	Underprint	
• Riddle of Malefics & Benefics	Underprint	
• Evolution & Involution of Astrology	Underprint	
• Vriddha Yavan Jataka	Underprint	
• Saivika Influences on Astrology	Underprint	
• An Exposition of Rahu & Ketu	Underprint	
• Utility of Shada Bala	Underprint	
• यवन-जातक	प्रकाशनाधीन	
• बृहद् यवनजातक	प्रकाशनाधीन	
• एकादशाध्यायी	प्रकाशनाधीन	
Mridula Trivedi & T.P. Trivedi		
• Predicting Marriage	Rs. 550 /	$ 75
• Shani Shaman Vol - I	Rs. 250/-	$ 25
• Shani Shaman Vol - II	Rs. 200/-	$ 20
Dr. S.S. Chatterjee		
• Advanced Predictive Astrology -Vol. I	Rs. 250 /	$ 40
• Advanced Predictive Astrology -Vol. II	Rs. 300/	$ 40
Padmashree Gopal Das "Neeraj"		
• Neeraj Jyotish Dohawali	Rs. 50/-	$ 5
• Neeraj Shuk Nadi Dohawali	Underprint	
U.K. Jha		
• Jatakalankar	Underprint	
Sunita Jha		
• ज्योतिष सरित सागर	प्रकाशनाधीन	
• भाव सिन्धु	प्रकाशनाधीन	
• योग मकरन्द	प्रकाशनाधीन	